ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क ३९

धूप के धान

श्री गिरिजा कुमार माथुर

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

: आगत फ़सल की राह में :

अनुक्रम

१.	नई भारती	१
२.	भोर : एक लैंडस्केप	३
३.	लैंडस्केप	४
४.	युगारम्भ	६
५.	एशिया का जागरण	८
६.	पहिये	१७
७.	प्रौढ़ रोमांस	२२
८.	शाम की धूप	२७
९.	दो चित्र	३३
१०.	महाकवि	३६
११.	पन्द्रह अगस्त	३९
१२.	सावन के बादल	४१
१३.	नई दिवाली	४२
१४.	सायंकाल	४४
१५.	बरफ का चिराग़	४८
१६.	आग और फूल	५१
१७	रात हेमंत की	५४
१८.	धूप का ऊन	५६
१९.	मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो	५९
२०.	न्यूयार्क की एक शाम	६२
२१.	मैनहैटन	६४
२२.	न्यूयार्क में फॉल	६८
२३.	चाँदनी गरबा	७३

२४. सिन्धु तट की रात	.. .	
२५. दिवालोक का यात्री	. ...	७६
२६. याज्ञवल्क्य और गार्गी	.. ...	७९
२७. नये साल की साँझ	.. ..	८०
२८. मिट्टी के सितारे	... ...	८२
२९. तीन ऋतु चित्र	... ..	८४
३०. पूरब की किरन	.. ...	८७
३१. पृथ्वी प्रियतम	... ...	८८
३२. रात हूँ	. ...	९०
३३. तैंतीसवीं वर्षगाँठ	.. ..	९१
३४. चन्द्ररिमा	.. ..	९४
३५. ढाकवनी	... ..	९५
३६ ऑटोग्राफ	... ..	१००
३७. गीत	... ..	१०१
३८. देह की आवाज़	... ..	१०३
३९. सावन की रात	... ...	१०९
४०. हेमन्ती पूनो	... ...	१११
४१. चरित्र की केसर	... ...	११३
४२. इतिहास	... ...	११६
४३ नींव रखनेवालो का गीत	. ..	११९
४४. इन्दुमती	.. ..	१२१
४५. धरा दीप	... ...	१३३

निवेदनम्

प्रस्तुत कविता-संग्रह पिछले नौ-दस वर्षोकी मेरी चुनी हुई रचनाओका कलन है। इन वर्षोमे हिन्दीकी नई कविता पनपी और बढी है, उसका सुकुमार पौधा अनजानी और अपरिचित मिट्टियोंसे रस लेकर बलवत्तर हुआ है, उसकी शाखाएँ फैली हैं और काव्य-क्षेत्रमे अब वह क्रमश गरिमा तथा प्रतिष्ठाकी ओर अग्रसर होगा ऐसा निश्चित है । हर नई चीज़की तरह हमारी नई कविताके सम्मुख भी गम्भीर समस्याएँ रही हैं। नये कविने साहसके साथ उनका सामना किया है और अपने यत्नोमे वह अन्तत सफल होगा यह हमारा विश्वास है। यदि उसमें यह शक्ति न होती तो उसके ये प्रयत्न एकाकी और एकान्तिक रहकर कभीके समाप्त हो गये होते। यह नई कविताके उज्ज्वल और जीवन्त पक्ष का ही प्रमाण है।

इतना होते हुए भी लोगोको नई कवितासे शिकायत है। और यह कोई अचरजकी बात नही है क्योकि मै समझता हूँ हर युगमे नवीनके प्रति इस प्रकारकी शिकायते रहा करती है। स्वय कालिदास और भवभूति जैसे महान् कृतिकारोको जो अपने युगके लिए एकदम नये और विद्रोही थे ऐसे ही विरोधसे आक्रान्त होकर कहना पडा था —

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।"

—कालिदास

"ये नाम किञ्चिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
कुर्वन्तु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्न. ।
उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥"

—भवभूति

पर ज्ञान-विज्ञानके इस ज़मानेमे जब कि हर क्षेत्रमें विशेषीकरण है। इन शिकायतोने भी विशेषका जामा पहन लिया है। छायावादका युग जब समाप्त हुआ और नग्न यथार्थ कवितामे आने लगा तब लोगोको शिकायत हुई कि कवितामें गदगी, भोडापन और फूहडपन आता जा रहा है। फिर इस प्रकृत यथार्थसे जब कवि-समाज यथार्थपर आया तो शिकायत हुई कि वह भौतिकवादी प्रचारक हो गया है। अगर उसने अपनी दृष्टि केवल व्यक्तिकी मानसिक समस्याओ तक ही सीमित रखी तो लोगोने उसपर भोगवादी होनेका लाछन लगाया और उसके कृतित्वको अनैतिक और उच्छृङ्खल कहा। जब वह अपने माध्यमोमे तेज़ीसे रद्दोबदल करने लगा, छन्द और उपमानोको उलट-पलटकर नई ज़मीन खोदने लगा, अपने गहरे और सूक्ष्म मनोवेगोकी अभिव्यजनाके लिए अपरिचित प्रतीक जुटाने लगा, अरूपका मूर्तसे चित्रण करने लगा तो उसे अनर्गल प्रलापी, निहिलिस्ट और गैरईमानदार कहा जाने लगा।

बात यही तक रहती तब भी गनीमत थी। शिकायतकी यह आँधी उससे भी आगे बढी और उसने अपनी लपेटमे स्वय इन कवियोको ले लिया। परिणामत पहिलेके प्रकृतवादी प्रगतिवादियोपर नाक-भौं चढाने लगे, प्रगतिवादी व्यक्ति-मन वालोको कोसने लगे और फिर यह तीनो मिलकर वस्तु और माध्यमकी उलट-पलट करनेवाले नये रगरूटोमे अपने चेले ढूँढने लगे। कवियोके साथ-साथ लेकिन उनसे कही बडी आलोचकोकी एक जमात इन पातियोंके समर्थन और विरोधमे आकर इकट्ठी हो गई।

इन शिकायतोको अलग-अलग यदि हम देखे और उतनी देर केवल एक ही प्रकारकी कविताको ध्यानमे रखे तब तो यही आभास होगा कि सन् चालीससे आजतक जो कुछ भी लिखा गया है वह कोरी बकवास रही है, अर्थात् इन पन्द्रह वर्षोमे काव्य-क्षेत्रमे कोई गरिमामय उपलब्धि होना तो दूर रहा अराजकता, विशृखलता, तोड-फोड और मारा-मारीका ही बाज़ार गर्म रहा है। लेकिन यदि हममे इन शिकायतोके बीच कोई अन्त सबन्ध (को-रिलेशन) खोजनेकी जिज्ञासा है, उन्हें अलग-अलग न रखकर इतिहास-

की विराट् पीठिका पर जुडी हुई लडीकी तरह देखने-परखनेकी दृष्टि है तो हमे इन शिकायतोंसे निराश होनेकी जरूरत नही होगी। हम इस समय उन आलोचनाओकी बात नही कर रहे जो इस दुराग्रहसे की जाती है कि जो कुछ पुराना है वही ग्राह्य है, जो कुछ नया है वह परम्परारहित और भ्रष्ट है; अथवा वे अतिवादी आलोचनाएँ जिनका सिद्धान्त-सूत्र ही यह है कि 'जो हमारे साथ नही वह हमारा शत्रु' है। हम समझदार पाठक और आलोचक की शिकायतोको ही ध्यानमे रख रहे हैं। उनका एक आशाजनक पक्ष यही है कि वे प्रत्येक शैलीकी कवितापर अलग-अलग की गई हैं। इस बिलगावमे ही उनके अन्त सम्बन्धका रहस्य छिपा है। प्रगतिशील कविता और उसके रूपान्तरोपर भी उतनी ही आलोचना हुई है जितनी प्रयोगशील कविता और उसके रूपान्तरो पर। इसका अर्थ यह हुआ कि इन सभीमे पाठक या आलोचक कोई-न-कोई कमी महसूस करता रहा है, उसके मनको पूरी तरह छूकर उन्होने सतोष नही पहुँचाया और इस तरह अलग-अलग वे सब उसे एकागी और आनुषगिक लगती रही है। नई कविताके विभिन्न क्षेत्रो और शैलियोकी सीमाएँ, उनमे अन्तर्निहित कसर या कमी ही वह सूत्र है जो इन आलोचनाओको एक भूमि पर लाकर खडा कर देता है। इसलिए इन शिकायतोको उदार दृष्टिसे देखने और उन आलोच्य कमियोको दूर करनेकी आवश्यकता है जिनके कारण हमारी अधिकाश नई कविता अब तक प्रयोगावस्थासे आगे नही बढ पाई और उसमे प्रौढता तथा परिपक्वताकी कमी दिखाई देती है।

नई कवितासे हमारा अर्थ उस समस्त कवितासे है जो पुरानी धाराकी प्रतिक्रिया स्वरूप काव्य-क्षितिजपर उदित हुई है। कवितामे वस्तु और शैलीकी हम कोई वर्णाश्रम-व्यवस्था माननेके पक्षमे नही है। शैली या विचार-वस्तुके श्रेष्ठ तत्त्व चाहे वह काव्यके किसी निकायसे आये हो हमारे लिए अछूत नही। हम यह मानते हैं कि श्रेष्ठ साहित्य पक्षधर नही होता, वह विभिन्न और प्रत्यक्षत विरोधी दिखनेवाले पक्ष या प्रवृत्तियोका समन्वय करता चलता है, उनके आधारभूत मूल्यो और तत्त्वोको समेटकर उनमे सतुलन

स्थापित करता है। साहित्यका यही नैतिक पक्ष है जो उसे महान् दर्शनकी श्रेणीमे ला बिठाता है। साहित्य और राजनीतिमे इसी कारण अन्तर है, क्योकि जहाँ राजनीति पक्षधर मात्र ही होती है और अपने दल अथवा सप्रदायके सकुचित स्वार्थों, आचार-विचारो, अनुशासन-नियमो और मतवादोकी बाह्य प्रतिष्ठामे उलझी रहती है वहाँ साहित्य राजनीतिकी सकीर्ण सीमाओसे परे उसके बुनियादी सिद्धान्तो तक जाता है और उसके मगल तत्त्वोपर ही अपनी दृष्टि रखता है। ऐसे विभिन्न मौलिक तत्त्वोको लेकर वह एक गहरी और व्यापक मानवीयताकी पीठिकापर उनका समन्वय करता है। राजनीतिसे उसका इतना ही सम्बन्ध है। वह तत्कालीन राजनीतिक विचारदर्शनोसे प्रभावित अवश्य होता है पर प्रभावित होकर, उनका साप्रदायिक अनुयायी बनकर नही रह जाता, वह उससे आगे बढकर भिन्न राजनीतिक अन्तर्विरोधोमे समाधान ढूंढता है और ऐसे मानवीय उत्तर प्रस्तुत करता है जो मात्र राजनीति या अर्थनीति नही दे सकती। इस प्रकार जब साहित्यकी भूमि आधारगत मानवी मूल्योकी है तब वह किसी एक प्रवृत्ति या पक्षविशेष तक सीमित होकर या उसमे समाकर नही रह सकता। उसके लिए उन सभी प्रवृत्तियो और पक्षोके वे तत्त्व ग्राह्य होते है जिनका रास्ता मानवीयता, सामाजिक न्याय और जीवन भविष्यकी आस्थासे होकर जाता है।

यह मानवीय मूल्य क्या है और उनकी क्या कसौटी है इसका सकेत करना यहाँ आवश्यक है। आज हमे चारो ओर मानवताकी आवाज उठती सुनाई देती है। प्रत्येक मतवाद मानवताकी बात करता दिखाई पडता है। मानवीयता और मानवीय मूल्योकी तरह-तरहकी परिभाषाएँ दी गई है और दी जा रही है। इन परिभाषाओमे एक दूसरेसे कोई साम्य नही है। प्रत्येक पक्ष मानवताकी एक विभिन्न और विचित्र कसौटी बतलाता है। धार्मिक मानववाद, व्यक्ति मानवता, वैयक्तिकतावाद, अस्तित्ववादी मानवीयता, ऊर्ध्वमानववादसे लेकर सामूहिक मानवता तककी उद्भावना इन परिभाषाओ द्वारा की गई है। इन परिभाषाओके पीछे प्रच्छन्न रूपसे

राजनीतिक शक्तियो अथवा स्वार्थोका हाथ है या नही यह इस समय हमारा विषय नही है। इसके एक अन्य पक्षकी ओर हम सकेत करना चाहते है। और वह यह है कि मानवता अब तक अरूप भावना (एब्सट्रेक्ट कन्सेप्ट) ही रही थी जिसकी चर्चा एक रहस्यात्मक ढगसे धर्मदर्शन करते थे। आज इन विभिन्न परिभाषाओ-द्वारा उसके रहस्यका उद्‌घाटन करनेका प्रयत्न किया जा रहा है, यथार्थ जीवनके अनगिनती पक्षोमे उसके स्वरूपको सर्वश देखनेकी चिन्ता की जा रही है। इसलिए यह दावा उचित नही है कि केवल एक ही प्रकारके विचारचिन्तनने मानवताके सम्पूर्ण दर्शन कर लिये है और मात्र वही ठीक है, बाकी सब गलत है। यह उसी प्रकारका अतिवादी दावा या तर्क है जैसे मध्ययुगोमे धर्मके विभिन्न सम्प्रदाय केवल अपनी पद्धतिसे ही ब्रह्म या ईश्वरके साक्षात्कारका दम्भ भरा करते थे। ईश्वरके रहस्योद्-घाटनके नामपर विश्वके अनेक धर्मसम्प्रदायोने बडे-बडे विवाद, शास्त्रार्थ, झगडे, आक्रमण, अग्निकाण्ड, सामूहिक रक्तपात और युद्ध रचाये थे। कालान्तरमे सामाजिक, आर्थिक तथा वैचारिक परिवर्तन आये और धर्म-सम्प्रदायोका स्थान राजनीतिक मतवादोने ले लिया, ईश्वरका स्थान मानवताने। आज मानवताके कल्याणके नामपर विग्रह, रक्तपात, शीतयुद्ध, और महायुद्ध रचाये जाते है और अणुयुद्धकी भीषण तैयारियॉ की जाती है। पहिले ईश्वरकी अमूर्त भावनाके नामपर मानवताका खून बहाया जाता था, आज मानवताके रहस्यपूर्ण नामपर मानवताका खून बहाया जाता है। इतना प्रत्यक्ष है कि अब मानवताकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य किसीमे नही है, इसलिए प्रत्येक कार्यमे उसकी दुहाई दी जाती है। इसका अर्थ यह भी है कि आज इसानियत अपने अधिकार और दायित्वोके प्रति अधिक जागरूक है और दिन प्रतिदिन वह अधिक जागरूक होती जा रही है। यह समूची इसानियतका दबाव ही है जिसके कारण प्रत्येक मतवाद उसकी प्रतिष्ठाका दम भरता है। मानवीयताकी जो आज अनेक परिभाषाएँ दिखलाई पडती है उनमेंसे वही तत्त्व जीवित रह सकेगे जो इस सचेतन मानवताके कामके होगे, जिनके द्वारा यथार्थ जीवनमे उसे भविष्य-

मंगल प्राप्त होता जायगा। शेष व्यर्थ तत्त्व उसी तरह लुप्त हो जाएँगे जैसे आज धर्मसम्प्रदायोके संघर्षरत विचारादर्शोका नाम-निशान नही रहा। उनकी आग इतिहासके महान् चक्रके नीचे कुचल कर बहुत पहिले ही बुझ गई थी। कोई कारण नही है कि आजकी युद्ध उगलती विचारधाराओंके साथ भी इतिहास यही वर्ताव न करे। मनुष्यकी सीमित आयुके अनुपातमें यह सघर्ष अवश्य ही चिरस्थायी दिखाई देते हैं। पर समय और इतिहासके विराट हाथो उनका फैसला होना निश्चित होता है। और जिस प्रकार धर्म-संप्रदायोकी आँच मानवताका एक व्यापक आलोक-सकेत छोडकर मिट गई थी उसी प्रकार आजके विरोधी मतवादोंके समन्वयसे भयरहित, कष्ट-त्रासरहित, अर्थ-मुक्त मानवताके एक सर्वांगीण दर्शनकी उत्पत्ति होगी जिसमे श्रद्धा, निष्ठा, आस्था, विनय, शील, प्रेम, जीवन-सम्मान, सामाजिक न्याय, अन्त करणकी नैतिक स्वतन्त्रता प्रतिष्ठित होगी। इसी पीठिका पर स्वस्थ मुक्त मानवताका नया व्यक्तित्व उदित होगा जिसमे बाह्य अर्थ-व्यवस्थाकी तुष्ट और परिपूर्ण नीवपर बुद्धि, विवेक, मर्यादा और असीम प्रेरणाके नये मानसिक स्तर प्राप्त होगे। यही वह मानवीय मानमूल्य है जिनके आधारपर नवीन काव्य-साहित्यको उठना अपेक्षित है।

इस विश्लेषणको सम्मुख रखनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि नई कविता अवतक क्यो एकागी रही है। उसकी विभिन्न विवादरत शैलियोने जीवनको केवल एक ही सीमित और कट्टर दृष्टिकोणसे देखा है। एक दृष्टिकोणने दूसरेको सिद्धान्त विरोधी कहकर दूसरे प्रकारके श्रेष्ठ तत्त्वोको या तो स्वीकार ही नही किया या उनको समाजविमुख कहकर अछूतकी तरह दूर रहने दिया है। कविताकी विचारवस्तुमे इसलिए हमे अक्सर उलझाव, दिग्भ्रम, अर्थहीनता, विशृंखलता, भटकती तर्क-विचारपद्धति, दु खवाद, नियतिवादी पीडा, द्विविधा, सदेह, अश्रद्धा, अनास्था देखनेको मिलती है। इस वैचारिक दिग्भ्रमके कारण इन बहुतसे नये कवियोको यह समझमे नही आता कि कौन-सा जीवन दर्शन उपयुक्त है, कौन-सा रास्ता उनका है। जब कविके विचार-जगत्में यह गभीर उलझाव और कुहासा है तो उसकी अभिव्यंजनाके

जो उपकरण है अर्थात् भाषा, प्रतीक, उपमान, छद अपने आप अस्वाभाविक, अधूरे, खडित और रूप-व्यक्तित्व-विहीन होगे। भाषा जानबूझकर बिगाडी या गढी हुई होगी जिसका व्यावहारिक जीवनसे कोई सम्बन्ध न होगा, चेष्टापूर्ण लाये हुए निरर्थ, बोधशून्य प्रतीक होगे, उपमानोमे कोई तारतम्य नही होगा और छन्दके नामपर भ्रष्ट गद्य भी न मिलेगा। चमत्कार पैदा करनेके लिए, कविताको साधारणसे अलग दिखानेके लिए शोमैनशिपके नये-नये तरीके अपनाये जायँगे, दूरकी कौडी लानेका अथक प्रयत्न किया जावेगा ताकि लोग चौंक पडे और कहे कि हाँ, यह नई बात है। नई कविताकी ओटमे ऐसे कुछ खोटे सिक्के भी आज चलाये जा रहे है लेकिन समय बहुत शीघ्र उन्हे कूडेके ढेरमे फेक देगा। यदि नये कृतिकारको काव्य-साहित्यमे अपना गम्भीर योगदान देना है तो इन कमजोरियोसे उसे ऊपर उठना होगा।

उपर्युक्त वैचारिक दिग्भ्रमके परिणामस्वरूप मानवतापर सास्कृतिक सकट, सामाजिक विघटन और साहित्यमे गतिरोधकी आवाज़ भी अक्सर उठाई जाती है। यह तो हम मानते है कि मानव सस्कृति बडे विराट और व्यापक परिवर्तनोमे से होकर गुज़र रही है, उसके मूल्य-मानोमे आमूल उखाड-पछाड़ हुई है, पर इन महान् परिवर्तनोको सकट कैसे कहा जा सकता है। सकट तो वह होता है जो भयकारी, विनाशकारी, अहितकर और मनुष्य-समाजके लिए घातक होता है। किन्तु तात्त्विक परिवर्तनोका यह क्रम ऐसा कदापि नही है। यह परिवर्तन मानव-समाजके स्वाभाविक विकासका ही परिणाम है। वे कारण नही है बल्कि कार्य है, प्रतिपल विकासमाना सामाजिक प्रक्रियाके नतीजे है। माना कि इन परिवर्तनोंसे सामाजिक विघटन हुआ है और एक नवीन स्तरपर आकर उनमे सतुलन स्थापित होना शेष है, पर यह भी सत्य है कि ये विघटित तत्त्व स्वय एक नई सतुलन-भूमि खोजनेके लिए क्रियाशील है। किसी भी आमूल परिवर्तनसे सामाजिक और सास्कृतिक विघटन होना स्वाभाविक है किन्तु जो जानते है कि ऐसे परिवर्तन ऐतिहासिक विकासकी अनिवार्य शर्त है, सधिकालके विघटन स्थायी नही होते बल्कि एक गुज़रती हुई अस्थायी परिस्थिति मात्र होते है, जो इन परिवर्तनोको

मगल भविष्यकी पूर्व पीठिका मानते है, जो परिवर्तनोंके साथ कदम मिलाकर चलते है उन्हे ऐसे परिवर्तन सकट नज़र नही आते। पुराणवादी, रूढिप्रिय दृष्टियाँ ही उन्हें सकटके रूपमें देखती है क्योकि वे परिवर्तन-विरोधी होती है, उनसे डरती है, और समाजको यथास्थिति (Status quo) मे रहने देना चाहती है। सामाजिक परिवर्तन उनकी पूर्वस्थितिको खतरेमे डालते है इसलिए परिवर्तन उन्हे भयावह और सकटपूर्ण दिखाई देते है। साहित्यमे गतिरोधकी दुहाई सास्कृतिक सकटवाले इसी रूढिग्रस्त, डिकेडेण्ट दृष्टिकोण-का रूपान्तर है। नये कविको अपेक्षित है कि इस भ्रमजालके चेहरेपर पडी नकाव उतारकर देखे, दृष्टिभेद न होने दे और उसे छोडकर अनास्थासे आस्थाकी ओर बढे।

नई कविताकी इन कमज़ोरियोसे परिचित होते हुए भी हम उसके भविष्यसे आश्वस्त है। उसकी तात्कालिक उपलब्धिसे हमे यह देखकर चाहे असन्तोप हो कि उसमे जो कुछ लिखा गया है उसका एक भाग ऊलजलूल और निरर्थक है, किन्तु उसके प्रेरक सिद्धान्त, नवीन लक्ष्योकी ईमानदारी और श्रेष्ठता अप्रतिम और वेजोड है। काव्य-साहित्यकी सीमाओका इन नवीन प्रयत्नोंसे वहुत वडा प्रसार हुआ है, उसके द्वारा नई दिशाएँ खुली है। जीवनका छोटे-से-छोटा पक्ष, साधारणसे-साधारण विषय अव काव्यकी गरिमाके अयोग्य नही रहा। सधे जमे और एक परिचित दायरेमे घूमने-वाले प्रतीक उपमानोंके स्थानपर वस्तु जगत्के समस्त क्रियाकलापोको उसने अपनी वर्द्धमान उँगलियोसे छूकर उन्हे ग्रहण किया है। मानसिक जगत्की अनेक सूक्ष्म प्रक्रियाओंके पर्दे उठाये है। दैनिक जीवनकी सैकडो छोटी-छोटी धटनाओके वातावरण और प्रतीकोसे काव्य-शिल्पको समृद्धिशाली किया है। जीवन-व्यवहारकी भाषा अपनाकर काव्यकी भापाको ताज़गी और नवीन शक्ति प्रदान की है। छन्दोके लिए अपरिचित लय-ताल और शब्दोंके नए सगीत-सम्वन्ध वह खोज रहा है। इस अन्वेषणमे उसे हर ओर उत्कृप्ट उपलव्धि ही हुई हो ऐसा हमारा आग्रह नही है। जहाँ-जहाँ नही हुई उसकी खरी आलोचनाके हम पक्षपाती है। पर अन्वेषणकी यह प्यास,

क्रिया और काव्यकी सीमाओको व्यापक करनेका उद्देश्य सिद्धान्तत स्तुत्य है। उससे हमारी कविताकी शक्ति वढ रही है, वह अधिकाधिक व्यापकता प्राप्त करती जा रही है, यह कोई छोटी बात नही है। आज चाहे हम इस व्यापकताके श्रेष्ठ उदाहरण नई कवितासे कम ही दे पाये और बहुतसे कृतित्वकी हमे भर्त्सना भी करनी पडे, पर इसका यह अर्थ नही कि नई पीढीको जो कुछ थोडा-बहुत देना था वह उसने दे दिया, अब नया काव्य उससे आगे न जायगा और जो दुर्बलताएँ आज है वह नही हटेगी। हमारे अन्वेषण अब उस बिदु पर पहुँच चुके है कि अब उनकी वर्तमान दुर्बलताओको प्रयत्नपूर्वक हटाया जाना चाहिए। जो कसर है उसकी पूर्ति की जानी चाहिए। उदाहरणके लिए पिछली पद्रह वर्षकी कवितामे आजतक कोई बृहत्काव्य या प्रबध नही लिखा गया जब कि छायावाद भी कम-से-कम एक वडे काव्यका दावा कर सकता है। नये कविके लिए अपनी समस्त अनुभूति और प्रेरणा-पूँजी लेकर इस दिशामे अग्रसर होना चाहिए। छन्दोकी अराजकता और विश्रृखलताको उलझे-सुलझे तर्कोसे सिद्ध करनेके स्थानपर उन्हे नई गठन और व्यवस्थाकी ओर उन्मुख करना चाहिए। छन्दोमे जो नई सगीत-गतियाँ आई है या जिन छन्द-प्रयोगोमे ऐसी सभावनाए है कि उनके आधार पर नये सुगठित छन्द निर्मित किये जा सकते है उनका वर्गीकरण किया जाना आवश्यक है जिससे आगे उनका सस्कार और विकास किया जा सके। अध्ययन या अनुभवकी कमीके कारण यदि छन्दोमे भूले है तो उन भलोको नया प्रयोग या विशेष वर्गके पाठकोकी चीज कहकर रेशनेलाइज नही करना चाहिए। यदि दृष्टिकोण या विचारादर्शोमे स्पष्टता नही ह तो उसे अपना नवीन दर्शन कहनेका दु साहस करना कोई ज़रूरी नही है। अपना विश्लेषण, स्व-आलोचन किया जाय, निर्ममतासे यह देखा जाय कि हमारी मानसिक पूँजी क्या है और हमारी विचार-प्रक्रियाका क्या स्वरूप है।

साराशमे नई कविताकी यही समस्याएँ और समाधान-दिशाएँ है।

प्रस्तुत कवितासग्रहका यह दावा तो नही है कि नई काव्यधाराका वही एकमात्र सफल उदाहरण है, उसका इतना निवेदन अवश्य है कि उसके कविने

नई धाराओं–शैलियोके स्वस्थ तत्त्वोका समन्वय करनेकी अथक चेष्टा की है।

इस पुस्तककी रचनाओको तीन मुख्य विभागोमे रखकर देखा जा सकता है। एक तो रूमानी गीतात्मकता, दूसरे यथार्थ और रूमानका समन्वय, तीसरे मानववादी वहिर्मुख भावधारा।

तीनो पक्षोमे शिल्पके प्रयोग किये गये है, विशेष रूपसे उपमान, रगयोजना और ध्वनिसगीतके।

पिछले कवितासग्रह "नाश और निर्माण" मे सवैयेको तोडकर एक नया मुक्त छन्द निर्मित किया था, प्रस्तुत सग्रहकी तीन रचनाओमे नये छन्दोका फिर निर्माण किया गया है। "शामकी धूप" मे उर्दूकी छोटी बहर (यथा–नींद क्यों रात भर नहीं आती) को तोड़कर उसके काल-मान और लयके आधारपर नया मुक्त छन्द रचा है। इसी प्रकार "नये सालकी साँझ" का छन्द भी गजलके काल-मानपर लिखा गया है। "चाँदनी गरबा" का छन्द एक गुजराती लोक-गीतसे लिया है जिसे गरबा नृत्यके समय गाया जाता है–
(आशी माशे शरद पुनमनी रात जे, चाँदलिया ऊग्यो रे सखि म्हारा चौक माँ)

"न्यूयार्कमे फॉल" सग्रहकी एक विशेष रचना है जिसमे आधुनिक वस्तुप्रतीकोका नया उपयोग है। शैली-शिल्पकी दृष्टिसे "याज्ञवल्क्य और गार्गी" एकालाप उल्लेख्य है। ऐसे मोनोलॉग का उपयोग हिन्दी कवितामे बहुत कम हुआ है। प्रयोगके इस वर्गमे "चन्दरिमा" भी आती है जो प्रभाववादी खड-विम्ब है। "सिन्धु तटकी रात" और "हेमती पूनो" मे छन्द और शब्द-योजनाकी सक्षेप-शैली (ब्रेविटी) द्रष्टव्य है। "ढाकवनी" मे जहाँ एक ओर वातावरण निर्माणके लिए जनपदीय (वुन्देलखड) उपमान, प्रतीक, और शब्दयोजनाका आधार लिया गया है वहाँ दूसरी ओर समाज-यथार्थ (सोशल रियलिज्म) के शिल्पका प्रथम बार उपयोग किया गया है।

इन कतिपय रचनाओका उल्लेख केवल उदाहरणार्थ किया है। सग्रह की अन्य समस्त रचनाओका अपना अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है, जिनमे शिल्प प्रयोगोंके साथ सामाजिक वस्तुके सामजस्यका यत्न मिलेगा और आगत फसल की अनिमेष प्रतीक्षा।

— गिरिजा कुमार माथुर

नई भारती :

[१५ अगस्त १९५२]

एशिया के कमल पर तुम भारती सी
पूर्व के जन जागरण की आरती सी
इस सदी के साथ केसर चरण धरकर
आ गईं तुम भूमि-स्वर्ग सँवारती सी
अमृत नदियों का जहाँ है सोम संगम
यह कपूरी लौ उठी उनकी मनोरम
लौट आई देश की ज्यों गंध गरिमा
चन्द्र तन, नक्षत्र मन, ले ज्ञान संयम

क्रांतिवाही यज्ञ के ज्वाला कमल पर
मुक्ति के कचन कलश लेकर रँगीले
सोन विधुरेखामयी आईं उदित हो
तुम इरामय इंदिरा सी चारुशीले
हाथ लेकर सभ्यता का रंग-केतन
शांति की संदेश-श्री मुख पर सुशोभन
तुम बढ़ी जनमुक्ति मंगल कामना सी
इस धरा के भाल पर बन लाल चन्दन

चीन से पाताल तक भूगोल सारा
एक संस्कृति डोर मे है बाँध डाला
पूर्व-पश्चिम की समन्वय धूप सा है
आत्मा के रूप का सौरभ तुम्हारा
विश्व के रसफूल की तुम नागकेसर
तुम अजंता-रेख जनगीता नवीना
पोंछती जाओ धरा के आंसुओं को
हाथ में ले सर्व सुख की रुद्र वीणा

कोटि मनुजों में भरो छबि सभ्यता की
कोटि कंठों में बनो ध्वनि मनुजता की

भोर : एक लैंडस्केप

[फरवरी १९४५]

अविरल जलते रजनी के दीपक मंद हुए
अब ब्राह्म घड़ी का ठंडा सा आलोक जगा
भैरव के मन्द्र स्वरो के पहले कंपन सा
वे सात पहरुए उतर गये हैं पश्चिम में
ले अंधयारे का सिंहासन
हल्की हो गईं हवा की तिमिर दबी सांसें
भ्रम की स्वर्गङ्गा के निशान
जो लुप्त प्राय नक्षत्रो मे है शेष रहे
प्रतिपल पीतल से रंग हीन होते जाते

तामस के शासन का प्रतीक
बुझता है वह अन्तिम प्रदीप
अन्तिम तारा
तम गढ़ के ढहते भारी कोट कंगूरों से

यह प्रथम प्रदोष निमिष है नये उजेले का
जीवन के नये जागरण का
अब युग की अंधयारी रजनी मिटने को है
जनरवि का अग्र प्रकाश-चरण
अंकित हो रहा धरा के मैले आंचल पर
जिसमे मानवता छिपी धूप बन सोती है।

लैंडस्केप :

[मार्च १९४५]

ये धूसर, सांवर, मटयाली, काली धरती
फैली है कोसो आसमान के घेरे मे
रूखों छाये नालो के है तिरछे ढलान
फिर हरे भरे लंबे चढ़ाव
झरबेरी, ढाक, कास से पूरित टीलों तक
जिनके पीछे छिप जाती है
गढ़बाटों की रेखा गहरी
ये सोंधी घास ढकी रूंदे
है धूप बुझी हारे भूरी
सूनी सूनी उन चरगाहों के पार कही
धुधली छाया बन चली गई है
पांत दूर के पेड़ों की
उन तालवृक्ष के झौरों के आगे दिखती
नीली पहाड़ियों की झांईं
जो लटे पसारे हुए जंगलों से मिलकर
है एक हुईं

यह चित्रमयी धरती फैली है कोसों तक
जिसके वन-पेड़ों के ऊपर
नीमों, आमों, वट, पीपल पर

निखरे निखरे मौसम आते
कच्ची मिट्टी के गावों पर
भर जाते खेरे और खेत
फिर रंग बिरंगी फसलों से
जिनमे सूरज की धूप दूध बन रम जाती
हर दाने में रच जाता अमरित चंदा का

इस धूसर, सांवर धरती की सौधी उसांस
कच्ची मिट्टी का ठडापन
मटयाला सा हल्का साया
तन मन मे सांसों मे छाया
जिसकी सुधि आते ही पड़ती
ऐसी ठंडक इन प्रानो मे
ज्यों सुबह ओस गीले खेतों से आती है
मीठी हरियाली-खुशबू मंद हवाओ में।

युगारम्भ :

[१४ अप्रैल १९४६]

ज्योति की तरंग उठी
दूर दूर छा गई
सदियों के तिमिर पार
मानवता आ गई

युग के विराट चरण
जनपथ पर गूजते
धरती के स्वर महान
अम्बर को चूमते

पशुबल के दीपों की
रेख पड़ी झांवरी
मिटी भयद कारा सी
कालरात्रि सांवरी

मृत्यु के निदाघ पर
जीत गई जि़दगी
तप्त, दग्ध भूमि हुई
हरित, पीत, संदली

यह विकास पंथ जमे
शिला-खंड घुल गये
तिमिर घिरे जन मन के
नये क्षितिज खुल गये

जीवन की गंगधार
कूल नया पा गई
सदियों के तिमिर पार
मानवता आ गई

अविरल है मंजिल यह
है न आखिरी विराम
इस प्रशस्त मार्ग चले
देश, देश, नगर, ग्राम

मानव महान उठा
एक ज्योति ज्वार पर
उजले इतिहासों के
प्रथम सिंहद्वार पर

अपने विरोधों से
श्रांत क्लांत था समाज
उन सहस्र पापों का
जलता है नरक आज

आदम का पुत्र बहुत
भटका अंधेरो में
चंगेजी न्यायों के
ख़ून भरे घेरों मे

किंतु धरा मृत्युंजय
स्वर्ग नया पा गई
सदियों के तिमिर पार
मानवता आ गई।

एशिया का जागरण :

[२४ मई १९४६]

अंगार बन गया आदि पूर्व
सदियों का धुंधला जंबुद्वीप
श्यामल कृतान्तजा धरा उठी
लेकर जीवन का अग्नि दीप

शत अनल शिखाओं से उठते
सीमान्त आज देशान्तर के
भर गये दीप्ति से नगर ग्राम
जनवास दीर्घ वन-प्रान्तर के

ये परम पुरातन महादेश
आये मशाल लेकर नवीन
जव, चीन, मलय, नव हिन्दचीन
ब्रह्मा, भारत, दृढ़ फिलिस्तीन

बंदी मानवता के उर से
उठता था युग प्राचीन धुंआ
वह चिर भस्मावृत अग्निपुंज
नभगामी ज्वालासिंधु हुआ

जन-अम्बुधि की यह एक लहर
आसन्न क्रांति की दूत हुई
लो महाशक्ति युग जीवन की
जन जीवन मे संभूत हुई

देशों से उठ आया निनाद
अन्तिम विराट जन-संगर का
अन्तिम अक्षर विद्रोह जगा
मनु के इस्पाती अन्तर का

हो एक प्राण, हो एक चरण
हो एक दिशा जनता निकली
इतिहास-सूर्य के अश्व मुडे
युगजीवन ने करवट बदली

नयनो मे अग्नि शिखाए हैं
मुख पर मानवता का चंदन
जनता जनार्दन आज बढी
करने आजादी का वंदन

हमने जीवन की ज्वाला मे
है पाप जलाया सदियों का
इस महायज्ञ से निकला है
यह कुलिश नवीन अस्थियो का

मेरी मानवता पर रक्खा
गिरि सा सत्ता का सिहासन
मेरी आत्मा पर बैठा है
विषधर सा सामंती शासन

मेरी छाती पर रखा हुआ
साम्राज्यवाद का रक्त कलश
मेरी धरती पर फैला है
मन्वन्तर बनकर मृत्यु दिवस

तेरी ज़ंजीरों में बंधकर
कंकाल हुई मेरी काया
मेरे फूलों को कुचल गई
तेरी संगीनों की छाया

वह अचल हो गया पत्थर सा
जो युग से अश्रुनिपात हुआ
मेरे मन का मानिक कंचन
गलकर कठोर इस्पात हुआ

यह वज्र इन्द्र का नहीं
कि जिससे निर्बल को आधार मिला
यह मानव का है वज्र
कि जिससे स्वर्ग सहस्रों बार मिला

यह चमक नही है दामिनि की
यह विद्युत शर है हाड़ों का
अब तल से मूल उखड़ता है
शोषण के श्याम पहाड़ो का

मेरी गुलाम तलवारों का
है सामूहिक संकल्प जगा
बंधन टूटे, सीमा फैली
फिर जल-प्लावन सा कल्प जगा

मेरी आंखो मे ज्योति जगी
तेरी आंखों मे अंधकार
तुझको मिट्टी है बना रहा
मेरी मिट्टी का बल अपार

मेरे अंतर मे मान जगा
अपनी विराट संस्कृतियों का
जागी विभूति सम्राटों की
तप जागा कर्मठ यतियों का

तुझमे झनकार शृंखला की
मेरे पीछे है सामगान
मेरी आत्मा के दर्पण मे
है खडे बुद्ध ईसा महान

मेरी इस आदि धरा मे से
निकला संस्कृति-रवि खिली धूप
मुझसे सतरँग सदेश चले
जब तेरा मन था अंधकूप

जब विश्व-सभ्यता नव शिशु थी
तब मेरे दर्शन-चाँद खिले
आदर्श महान मनुजता के
ब्रह्माण्ड-सृष्टि के भेद खुले

मेरे उजले घर में आया
तू बन अंधयारे का जाला
तूने डस लिया अजाने ही
मेरे दीपों का उजयाला

तेरे तम-सागर मे डूबा
मेरे किरीट का मणि-दिनेश
ओ मनुज-राहु, तूने निगले
ये चाँद सितारो के प्रदेश

ए हिम के झंझावात
जमी तुझमे जीवन की गंगाएं
गल गईं सुनहली फसलों-सी
सदियो की पकी सभ्यताएं

छाया वर्षो की सीलन मे
ख़ूनी मकड़े जैसा प्रसार
गोधूलि धुंध में डूब गया
एशिया, ज्योति का सिहद्वार

फिर सासे घुटी अंधेरे मे
बंदूको से बरसात हुई
तोपो से जो बारूद उडी
वह दो सदियो की रात हुई

फैली जंजीरे नागो-सी
इन धूप भरे मैदानों मे
भारी बूटो की गूंज उठी
लुटते खेतो खलिहानो मे

वे मिट्टी के अविजेय दुर्ग
गढ, कोट, हवेली, रंगमहल
वे राव- रावले सामती
धूसर परकोटे, बुर्ज अचल

युग मटमैले तोरण फाटक
गोलो से उडकर धूल हुए
पश्चिम की ख़ाकी आंधी मे
नीवे उखडी निर्मूल हुए

बिगुलों में डूब गया गर्जन
बूढे तैलाक्त नगाड़ों का
देसी पानी सब उतर गया
उन रत्न जड़ी तलवारों का

वे तेल फुलेलों में डूबी
आधी बेहोश सभ्यताएं
ढह गईं कागजी महलो-सी
घुन लगी खोखली सत्ताएं

धुंधयारी लाल मशालों का
फानूसों का युग बीत गया
प्राचीन अंधेरे के ऊपर
यह नया अंधेरा जीत गया

फिर रेल तार से कसी धरा
जम गये दासता के निशान
मैली फफूद से शहर उगे
क़स्बे, व्यापारिक केन्द्र म्लान

चिकनी सड़कों के आसपास
फैली तमिस्र गंदी गलियां
श्री, सुख, संपदा विदेश गई
रह गईं ग़रीबी की कड़ियां

ओठो पर ठोक दिये ताले
मन के वातायन मूद दिये
अभियान मुक्ति के तूफानी
जेलों के भीतर रूंध दिये

आत्मा कूड़े का कॉच बनी
मन कीच कुण्ड नाकामी का
पीढी दर पीढ़ी मे फैला
तिल तिल कर जहर गुलामी का

दी उठा भेद की दीवारे
रच धर्म, जाति, प्रातीय-भाव
भाई से भाई लड़ा दिये
जब जब लग पाया कुटिल दांव

जन जीवन के हर पहलू में
कर दिये अनीति पिशाच खड़े
छल, कपट, द्वेष, नीचता, दग़ा
लालच, विग्रह के दैत्य बड़े

तेरे माथे है दाग
हमारी नैतिकता की चोरी का
बन वज्र गिरेगा पाप
युगो की तेरी आदमख़ोरी का

तेरे सिर पर बन मृत्यु पुंज
इसानी दर्द बोलता है
काली दीवारे उखड़ रहीं
ध्रुव आसन आज डोलता है

वे रक्त-यंत्र उत्पीड़न के
तेरे, तुझको ही काल बने
जो जाल बिछाये थे तूने
तुझको डसने को व्याल बने

घर, नगर, ग्राम, वन, सिधु बीच
मेरी धरती ललकार रही
मानवता की यह क्रुद्ध आग
दिशि दिशि से तुझे पुकार रही

ओ मनुज दासता के प्रहरी
यह देख दुर्ग जलता तेरा
धू धू जलते हैं अस्त्र शस्त्र
जलकर गिरता जंगी घेरा

मुड़ गये समय के चपल चरण
आया कृतान्त बन मुक्ति काल
मिट्टी का हर कन सुलग उठा
जल उठी एशिया की मशाल !

पहिये :

[नवम्बर १६४६]

ये घूम रहे है जीवन के पहिये महान।
नभ मे ये सूरज, चाद, सितारों के पहिये
घूमा करते विश्राति हीन
नीचे धरती का चक्र चला करता अविरल
जिसके रगीन दायरे में आती ऋतुएं
फल, फूल, फसल की बांध करधनी चमकीली
दिन रात गोल बाधे आते
दैनिक जीवन का क्रम बनता समाप्त होता
फिर नये बिन्दु से चल पड़ता
पहियों के अविरल मंडल मे

युग युग से जीवन चक्र चल रहा इसी तरह
इस आवर्तन मे दुनिया की
सदियों लम्बी गतिवान मजिले पार हुई
ये पहिये है आधार सभ्यता संस्कृति के
प्रस्तर युग से जो ले आये है ऐटम तक
इस दुनियां का कारवां अमर
ये रुके नही पथ के ऊपर

मिट्टी को विकसित कर लाये
आनेवाले सामाजिक समता फूलों मे

ये शक्तिवान मेहनत की बांहों के प्रतीक
उन रूखे भारी हाथों के गतिमान चित्र
गढते जाते है जो सामाजिक मूरत को
जीवन की मिट्टी को सँवार
सच्चे कर देते है सपने
लेते है स्वर्ग उतार विचारो के नभ से

इन पहियों की छायाओं में
दिखती है कितने युग की तसवीरें विराट
वे आरंभिक कृषि-युग की गाड़ी के चक्के
स्वर्णिम गेहूं जौ के बोझों से दबे हुए
वे यात्रा के अलसित साधन
धीरज साहस के सबसे बूढ़े विजय चिह्न
वह पथ मे पंक्ति बांध बढ़ते रथ चक्रवान
सामंती युग के प्रारंभिक गौरव निशान
वे अर्धचन्द्र धनु, प्रत्यंचा, तूणीर, तीर
घन वज्र, कुठार, खंग, मारक आयुध अधीर

बढ़ती जाती है दृष्टि और सदियो आगे
वह अर्ध ज्ञानमय अंधयारे जग का आंगन

अधिकारहीन धरती का पुत्र निरीह नयन
कर बांधे, अपलक दृष्टि, खड़ा जो पैरों मे
उन दैवी सम्राटों के सिहासन नीचे
फिर दिखते है वे दुर्ग, बुर्ज, गोलार्ध भीम
अत्याचारो के लौह कवच
सीज़र की असि-गूजो से ले क्रूसेडो तक
नीरो, चगेज़ों, तैमूरो के अट्टहास
उठकर सहसा है आ जाते
फिर बुझ जाते है काल-चक्र की घूमों मे

दिखती है सदियों के पथ मे
काई से काली चट्टानों सी दीवारे
वह कत्लगाह, तहख़ाने जिनमें कैद रही
सदियों तक गूंगी मानवता
मिट्टी के टीले सी मृत बारूदी ढेरी
जो पहिली ही चिनगारी में
ले उडी खंड खंड करके
कितने भीषण वेस्टीलो को
वह मध्यवर्ग की महाक्रांति का लाल धुंध
वह वक्र दरातों की पातें
वह गिलोटीन के दुर्दम रक्त रँगे पहिये
दिन रात चले जो क्रुद्ध मनुजता के कर से

ख़ूनी बदला लेने पिछले सब ख़ूनो का
कर ध्वस्त नष्ट सामंतवाद का रक्त महल

अब बढ़ता है सामाजिक चक्र और आगे
युग में है दिखने लगा गैस का उजयाला
चल पड़े भाप से नई मशीनों के पहिये
बन यंत्रक्रांति के अग्रदूत
मानव की प्रकृति विजय का पहला सूत्रपात
लोहे की विजय वनस्पति पर
ईश्वर पर पहली विजय
चिरंतन मिट्टी की

फिर 'खुल सुम-सुम' जैसे मिल गये विकास सूत्र
खुल सके सृष्टि के वे रहस्यमय बंद द्वार
इन डोरो मे बंध गई धरा
फिर नई शक्ति का यंत्र उठा
उद्योग और व्यापारों का फैला प्रसार
पूजी की कंचन बेल बढ़ी
देशों की सीमाएं सिमटी
आरंभ हो गई दौड़ नये बाज़ारो की
अंधी लिप्सा वह उपनिवेश हथियाने की
चढ़ चले जीतने सिधु भयंकर स्टीमर
बारूद और गोलों के ले काले पहाड़

जल-थल के कोने कोने मे
फैलाने सगीनो से अपना सामराज

गति चक्र बढ़ चला और दूर
कस गई गुलामी से सारी प्राचीन धरा
मानवता की गर्दन में पडी नई गाठे
आविष्कारो के सुख साधन
सब अस्त्र बन गये शोषण के
साम्राज्यवाद के हाथो मे

पर परिवर्तन का तेज चक्र बढ़ता आगे
है धार काटती नागपाश
बस इसीलिए होगा विनाश
मानव का मानव पर
दुख, दोहन, अनाचार
इसलिए कि रुकता नही कभी गति का पहिया
अविरल चलता विकास का क्रम
वह पास लिये आता है मनुज समाज नया
जब दुख की सत्ता मर जाएगी
पीले बासी फूलो सी।

प्रौढ़ रोमांस :

[२३ जनवरी १९४७]

मेरे विरही युवा मित्रवर
तुम जिस दुख से परेशान हो
वह सचमुच है दु:ख नही कोई जीवन मे
असली दुख है और बहुत से
तुम जिसको हो समझ रहे भारी पहाड़ सा
वह तो कागज सा हल्का है
आज दे रहे हो जिसको इतना महत्त्व तुम
वह कल ही फीका मजाक बन रह जाएगा
ज्यों दुहराई बात रोज़ की
यह रह रह कर निकल रही जो ठंडी सांसे
यह हवाइयां मुँह के ऊपर
उड़ी उड़ी बाते हताश सी
खोई खोई चाल, और
बेहोश आदमी जैसे कामकाज दिन भर के
यह सब क्या है
यह कैसा है अजब तमाशा
मै इन सारी बातों को हूँ खूब समझता
बड़े बड़े इस प्रणय-काल के आदर्शों को

पर मुझको है पता
कि बिछुड़न की इन तीखी पीड़ाओं मे
ऊँचे ऊँचे आदर्शों की इन बातों मे
छिपा हुआ है भेद कौन सा
तुम इस जीवन का निचोड़ जिसको कहते हो
वह सारा वेदान्त फलसफा
काव्य कला की मधुर कल्पना
केवल शारीरिक है
आज नही मानोगे तुम मेरी बातों को
नीरस सीख कहोगे जिनको
पर अपनी खिल्ली कल तुम्ही उडाओगे
जब दैनिक जीवन की भट्टी में
गल जाएंगे खोटे सिक्के सारे मन के
तब जानोगे इन आदर्शों की सच्चाई

हमने भी सोचा था पहले
इस जीवन में
सबसे अधिक मूल्य होता कोमल भावो का
पर ठोकर पर ठोकर खाकर हमने जाना
तोल तराजू के पलड़ों मे
मन के संघर्षों से बाहर के संघर्ष
अधिक बोझल है

और हृदय की कलियां खिलती देखी
रुपयों की पूनो में
और प्यार के चाँद वुझ गये
जीवन की सड़कों पर आकर

हमको भी है ज्ञान विरह का
और मिलन का
यह मत समझो वरफ वन गया हृदय हमारा
या कालान्तर मे पथराये भाव हमारे
या हमको है नही किसी की याद सताती
पर वह तुमसे बहुत भिन्न है
हम मन में सुधि रखकर भी
है कर्मशील
हैं संघर्षो मे डूवे भूले
हम डटकर जीवन से युद्ध कर रहे प्रतिपल
आज हमारे संमुख और समस्याएं है
प्रश्न दूसरे
घर के, वाहर के, समाज के
मुल्क और दीगर मुल्कों के
अव हमको सुधि की पीड़ा है नही सताती
केवल ध्यान यही आता है
आज न वच्चे घर मे है कूडा करने को

खूब सफाई है आँगन, छत पर, कमरो मे
पर कुछ खाली खाली सी है
आज नही अच्छी लगती यह
आज न फैले जगह जगह टीन के डिब्बे
सिगरेटो के खाली पैकेट
चिदी किये हुये कागज
पन्नी दांतों से चबी चबाई
लकडी खोखे काठ कठम्बर
दिन भर के दंगो की पीछे छुटी गवाही
नही आज है
पहले इस कूड़े करकट से
मन मे झुझलाहट होती थी
आज वही बच्चो का कूड़ा याद आ रहा

और याद यह आता संध्या की बेला मे
यह एकांत मकान
और उजली बाहों सी यह दीवारे
नही समेट पा रही मुझको
और न दिन भर की थकान को मिटा रही है
निस्संकोच लिटाकर अपनी
छत सी खुली हुई छाती पर

यह सब––
और बहुत सी बाते मन में आती
पर इनसे मन बोझल आज नहीं होता है
और न मुँह पर छांह उदासी की आती है
और न लगते दिन निराश
राते मटमैली
क्योंकि बड़ी भोली मिठास की सुधियां है ये
जीवन के मासूम सुखों की
तन के मन के स्वस्थ चैन की
जिनकी उजली उजली छापे
खिची हुई है स्वस्तिक सी कोने कोने मे

और क्योंकि हमने भुज बल से
अपना मार्ग प्रशस्त बनाया
दु खो से कर युद्ध
परिस्थितियों से लड़कर
और जूझकर भारी से भारी अंधड़ से
अपना ऊँचा सिर न झुकाकर
केवल मिथ्या आदर्शो से नही
नही कोरी रंगीन कल्पनाओ से
किंतु ज़िंदगी की मिठास का रस लेने को
हमने कटुता से खुलकर संघर्ष किया है।

शाम की धूप :

[१६ फरवरी १६४७]

चल पड़ी तेज़ हवा
बदल गया मौसम
आ गई धूप मे कुछ गरमाई
बढ़ गया दिन का उजेला रस्ता
जिसपै सूरज के चमकते पहिये
शाम को देर तक चले जाते

ये हवा धूप-मिली
लहर सी आके लिपट जाती है
कभी हल्के से उड़ा देती बाल
कभी छत पर बैठी ललनाओं के
सोंधे तन-गंध भरे आंचल को
गोरे कंधे से उड़ा देती है

और उड जाते सूखते कपडे
ऊँची सीमेंट की मुडेरों से
छोटे कुर्ते, रुमाल, टेबिल-क्लाथ
छींट की फ्राक, रेशमी जम्पर
साड़ियां बुँदकियों लहरियों की
और ब्लाउज़ महीन चटकीले

जिनमें थे पड़ गये पहिनने से
चिह्न रंगीन गठे अंगों के
सभी कोमल-कठोर उतार चढाव

ये जो अपने मे समेटे रहते
घर की उस धूप को, किरन तन को
ये हैं रंगीन लहरते केतन
उस पवित्र चैन के, निश्छल सुख के
अन्त मे जीत ही जो जाता है
रोज के मानवी संघर्षों पर

पड़ गई मंद हवा
हो गई सुनहरी धूप
पेड़ के पास सूर्य जा पहुँचा
जिससे पत्तों का रंग लाल हुआ
शाम का झुटपुटा सा होता है
दूर पर छै की गजर डूब रही
छतों पर ऊँचे टीन के पाइप
और उन घर की चिमनियों मे से
उठ रहा है वह ताजा हल्का धुँआ
लिये हल्दी की, प्याज की खुशबू
ताजी तरकारियों के छुकने की
उस धुँऐ मे ही मिलके आती है

उन चपल चूड़ियों की भी आवाज
सांवले-गोरे गोल हाथों मे
बज रही है जो तेज चलने से
क्योकि अब बन्द हो गये दफ्तर
काम के केन्द्र कारख़ाने भी
और घर लौटने लगे पंछी
जा रहे काग भी बसेरे को

और सड़कों पै लौटता है शोर
तीसरे पहर के सुनसान को तोड़
कंकरीटो पै बूट धूल भरे
गूँजते अनमिली आवाज़ के साथ
जो मिली ध्वनि से है ज्यादा मीठी
घंटिया बज रही है रिक्शो की
बीसियों साइकिलों की पांते
कैरियर, टोकरी या हैंडिल मे
कुछ के ख़ाली कटोरदान बंधे
कुछ मे है फाइले हर छिन भूखी
जो न कभी ख़त्म हुई दफ्तर मे

है जरा कम ही टोकरी ऐसी
जिनमे आते है मौसमी फल-फूल
या कि फुटपाथ पर बिकती चीजे

मूँगफलियां, गरी, केले, अमरूद
या डबल रोटी, केक, 'बन', बिस्कुट
'चीज', टिन फ्रूट, सिरप या सिरके
ऐसी किस्मत की टोकरी कम है

वर्ना अक्सर ये है खाली आती
बहुत हुआ तो इश्तिहार नई पिक्चर का
या सुबह का मुड़ा हुआ अख़बार
या कोई सस्ती सी कहानी की किताब
जो किसी दोस्त ने ख़रीदी थी
ये ही किस्मत मे है इस टोकरी के

किंतु इसका है गम नही कुछ भी
बन गया जब अभाव ही जीवन
छिन्न है जब समाज के सब तार
मानवी बंधनों की टूट गईं है कड़ियां
जिंदगी का बहाव बन्द हुआ
एकरस धार रुकी, न्यून हुई, सूख गई
क्योंकि उद्‌गम ही कट गया उसका

आज पग पग पै क्लेश कठिनाई
घर से खलिहान तक है अन्न नही
कारख़ानों से लेके बस्ती तक

है न कपड़ा कही पहिनने को
दूध घी का यहा पै चर्चा क्या
जब न चीनी, न गुड, न दाल-नमक
हो गया स्वप्न किरासिन का तेल
इनका अब ख्याल है इतिहास की बात
बढ रहा नित नया उलझाव घना
जिदगी पर यह शिकंजा दिन दिन
होरहा और कड़ा और कठिन
संकटो की यह मौत सी छाया
आ गई और अधिक नीचे तक
चाहती आंख बचाकर डसना
उन घरेलू अगीठियो की आग
रोज का चैन उजेला घर का
यानी बुनियाद तक ही जिदगी की

आज इंसान हो गया है कैद
पर न मन हार मान सकता है
क्योकि विश्राम की इस बेला मे
यह थकी, अनमनी, सुनहरी धूप
दिन के सघर्ष से जो तप तप कर
उजले सोने सी निखर आई है
साझ की मीठी बांह चाहती है

घर के उस फूल पर ये मन की बूंद
ठहरना चाहती सुधबुध खोकर
जिससे उतरे थकान तन मन की
डूबकर रात की मिठासो मे
जब उगे शाम का पहला तारा
और जब जल चुके दीपक रंगीन
जिदगी सिक के ताजा फूल वने
घर के मृदु वक्ष की गरमाई मे !

दो चित्र :

[मई १९४७]

दो चित्र सदा मेरी आखो मे आते है

. एक :

पूरब की धरती का अंतिम पच्छिमी छोर
वह रुक्ष धरा जिसमे सदियो का खार बिंधा
भूमध्यसिंधु का मकर जिसे खाया करता
वह अग्नि-भूमि ऊसर, निर्जन
रेगिस्तानो से तपी
खजूरो से छाई
जिसके अंतर की महाधातु बाहर आती
है, गरम तेल के सोतों से
उस धरती पर है एक युगो से क्रास गड़ा
ऐसी लकड़ी का
जिसे समय का दीमक काट नही पाया
भूमध्यसिधु के पानी मे
पड़ती विशाल जिसकी छाया
वे एक सीध मे खिची हुई लंबी बाहें
खूनी कीलो से जडी हुई

मुख की मुद्रा विश्रांत मौन
सिर एक ओर को झुका हुआ
नीचे हैं पतले पैर साथ मे बंधे हुए

यह दो हजार वर्षों की छांह हवाओं मे
अब धुंधली पड़ती जाती है
इसलिए कि जो इंसान चढ़ा था सूली पर
वह जिंदा होता जाता है इंसानों में

: दो :

पूरब की धरती का वह सूरजमुखी छोर
सबसे पहले की धूप-रची क्वांरी मिट्टी
जिसके चरणों मे तीन सिंधु है डूब रहे
पाकर तलुओं की शीतलता
वह नदियों, गिरि, वन, मैदानों की श्याम धरा
गेहूं की हरी बाल जैसी
केसर सी मृदु, हीरे सी दृढ
ऋतुओ की फसलो सी सुन्दर
गंगा सा अतर धीरवान
यद्यपि विन्ध्या की चट्टानो सा है कठोर

वह धरती भी है चढी युगो से सूली पर
है खिची हिमालय सी बांहे

दोनों हथेलियां जड़ी हुईं
साम्राज्यवाद की मुहर लगी दो कीलो से
है पर्वत चरण बधे नीचे
मुख की मुद्रा है मौन
किंतु आँखों मे आग धधकती है
है कसे धनुष से वक्र ओठ
पर आँखो मे आग्नेय बान खिचता जाता

यह फैल रही है छाया सभी दिशाओ मे
ज्यो धुँआ फैलता भीम हवा के झोके से
मिटने से कुछ घड़ियां पहिले
इसलिए कि जो इसान मिला था मिट्टी मे
वह मिट्टी का तूफान उठाता आता है ।

महाकवि :

[निरालाजीके प्रति]

[जुलाई १९४७]

तुम कालिदास, तुलसी, रवीन्द्र
के अमर चरण चिह्नों पर रखकर चरण चले
ओ महाकाय, रवि की अविलंब विमल गति से
आजानु करो से घेर लिया
तुमने कविता का फुल्ल कमल
पंखुरियो पर निज गीतो के अंकन उतार
उन लम्बी किरन उँगलियो से
जिनके चलने की छाया में
थी डूब गई हो मूर्तिमान
सब भाव भगिमाए रंगीन अजन्ता की

प्राचीन तपोवन की सारी सुधियाँ उठती
ऋषियो की कातिमयी विराट तन-छायाएं
वे यज्ञ-धूम से मंथर उडते केश पुंज
ऋजु कुटिल लटे
धूर्ज्जटी सदृश
आवर्तित चौड़े कंधो पर
जो भार वहन करते थे युग परिवर्तन का

लम्बी पलकें रक्ताभ नयन
रंजित था जिनमे लाल गुलाबो का अंजन
छाई थी जिनमे प्रज्ञा की निरुपम प्रशाति
तेजस अंतर की चेतनता
विमलाग शरद की गहन गँभीरा झीलों सी
सीमांतमयी सीमा विहीन
उस ध्यान मग्न वंकिम भ्रूरेखा मंडल मे
राकेश बिम्ब से उदित हुए
कितने दूरागत सपनों के सुदर रहस्य
कितने अनादि सत्यादर्शों के
आदि महद सौंदर्य-रूप
विश्वानुभूति के जिन उजयाले घेरों मे
नूतन विचार के धुंधले मदे क्षितिज खुले
खुल गये कल्पना के दिगंत
खिल गये हिमजमे भाषा के केसर प्रांतर

गंगा तट का वह पांडुवर्ण मंगल प्रदेश
सदियों पहले के मत्रपूत रजकण जिसके
उस मिट्टी मे से उठी एक ज्योतिर्रेखा
जो खिची रही मुक्ताओं, फूलों, तारों तक
जिसके रगों मे रची हुई थी ग्राम-धूप

खेतों की उजली विशद प्रभा
जो रंगभवन की आभाएं अनुरंजित कर
जन जन के मन मे बनी क्रांति की चिनगारी

ओ शक्तिदूत, युग के विद्रोही कलाकार
तुम बढ़े रुढिगत भावों की प्राचीर तोड़
भीषण अवरोधों की चट्टानों के ऊपर
निर्माण पंथ बन गया धीर पद चिह्नो से
इन नई मुक्त सीमाओ पर निर्बाध बही
युग की पुजित गति सी कविता की भगीरथी
कर मंत्रमुग्ध अनुसरण तुम्हारे चरणों का
कवि अम्बु, तुम्हारी स्वर-डोरी का संबल ले
नव मानवता आ गई क्रांति के सिह द्वार
निज काले कर्मों से था जो पकिल समाज
जिसके पापों से संतापित तुम रहे
किन्तु, जिन क्रूर शक्तियों से तुम जूझे जीवन भर
उन महलों के दीपक अब बुझते जाते हैं
गिरता है उस समाज का अब विक्षत खंडहर।

पन्द्रह अगस्त :

[१५ अगस्त १९४७]

आज जीत की रात
पहरुए, सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना

प्रथम चरण है नये स्वर्ग का
है मंजिल का छोर
इस जन-मंथन से उठ आई
पहली रत्न हिलोर
अभी शेष है पूरी होना
जीवन मुक्ता डोर
क्योंकि नहीं मिट पाई दुख की
विगत सांवली कोर

ले युग की पतवार
बने अंबुधि महान रहना
पहरुए, सावधान रहना

विषम शृंखलाए टूटी है
खुली समस्त दिशाएं

आज प्रभंजन बनकर चलती
युग बंदिनी हवाएं
प्रश्नचिह्न बन खड़ी हो गईं
यह सिमटी सीमाएं
आज पुराने सिहासन की
टूट रही प्रतिमाए

उठता है तूफान, इंदु तुम
दीप्तिमान रहना
पहरुए, सावधान रहना

ऊँची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी
छायाओं का डर है
शोषण से मृत है समाज
कमजोर हमारा घर है
किंतु आ रही नई जिदगी
यह विश्वास अमर है

जनगंगा मे ज्वार,
लहर तुम प्रवहमान रहना
पहरुए, सावधान रहना !

सावन के बादल :

[अगस्त १९४७]

काले अगरु से उठे आज बादल

ये मिट्टी की गंध से सोंधी हवाएं
ये जामुन के रंग सी नीली घटाए
उडी आ रही है लहर सी फुहारे
उमगते उरज मेघमाती भुजाएं

खुली फूल बाहे हटे लाज आचल
काले अगरु से उठे आज बादल

नहाकर वनस्पति हुई ऋतुमती सी
नितम्बिनि धरा ज्यो कुवरि रसवती सी
नवोढा नदी ने नवल अग खोले
सजी दीपतन की मिलन आरती सी

उठे नैन लालिम हंसी रेख काजल
काले अगरु से उठे आज बादल

चमक बिजलियो की पलक-चांदनी सी
खुले चाँद तन की झलक दामिनी सी
झुके मेघ गीले अधर ज्यो झुके हो
लिपटती हवा मस्त गजगामिनी सी

वियोगी, मिलन याद मे दुख भुला चल
काले अगरु से उठे आज बादल

नई दिवाली :

[१५ अक्टूबर १९४७]

कातिक का रसवान महीना
धरती फूली-फाली
ठंडी मिट्टी पर खिल आई
दीपक सुमन दिवाली
गृह-लक्ष्मी सी सांझ खडी है
पीत किरन तन वाली
जला दीप से दीप
चमक से भरी धरा की थाली

कुंकुम बंदन वार बँधे
यह नया मुक्ति का द्वार है
यह स्वतंत्र भारत का पहला
दीपो का त्यौहार है

आज सांवली संध्या की
रंगीन हुई परछाईं
धरती के चित्रित प्रकाश की
पड़ती नभ तक झाईं
नये देश के नगर, ग्राम, गृह

हुए स्वच्छ चमकीले
आजादी के स्वर्ण शस्य से
घर आगन हो पीले

धूप उगे, फसले फूले
अक्षय सुख का भडार हो
जले निरतर दीप
नित्य ही दीपो का त्यौहार हो

ले वैभव का धान्य
महालक्ष्मी घर-घर मे उतरे
ऋद्धि सिद्धि से भरे ग्राम
नगरो मे श्री सुख बिखरे
मेरी इस सावर धरती पर
सोना चादी बरसे
ऐसा दीपक जले कि जिससे
स्वर्ग धरा को तरसे

इस लौ में दारिद्रय जले
ज्यों जले अंधेरा रात का
जन जन का जीवन खिले
ज्यों पहला फूल प्रभात का ।

सायंकाल :

[३० जनवरी १९४८]

सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ
काल पुरुष मिट गया, धरा का सूना भाल हुआ

आदि ज्योति उठ गई आज
मिट्टी के घेरे पार
युग की अक्षय आत्मा सिमटी
बनी एक चीत्कार
आज समय के चरण रुक गये
हुई प्रलय की हार
महा पूर्णता मानवता की
छोड़ गई संसार

मरकर मानव अमर बना लघुरूप विशाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ

रुग्ण धरा पर जमी हुई थी
सदिया बन प्राचीर
मानवता पर कसी युगों से
पापो की जंजीर

ईसा, बुद्ध खड़े नतशिर
थी खिची शक्ति शमशीर
तुमने धरती के माथे से
पोंछी रक्त लकीर

मृत प्रतिमा जागी, जीवित जग का कंकाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ

एक अशेष दुखद सपने सा
उलझा था संसार
दिन मे जले दीप सा जीवन
हृत चेतन निस्सार
मिट्टी की चिर सृजन-शक्ति का
ले विराट आधार
तुम हर कन से उठा सके
मानवता के अवतार

पथ की हर पदचाप क्रांति, हर चिह्न मशाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ

थकी ज्योति का तिमिर ग्रसित
संघर्ष हुआ गतिवान
इतिहासो के अंधकार से
उठ आया इसान

हार गई आत्मा पर आकर
पशुता की चट्टान
कष्टों से पंकिल मानवता
उठी बनी हिमवान

जनता हुई अजेय नया जीवन जयमाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ

किंतु तिमिर फिर उभरा
करने अंतिम अस्त्र प्रहार
धर्म, जाति, हिंसा को लेकर
तक्षक सी तलवार
मनुज जला, शैतान उठा
देवत्व हो गया क्षार
साम्राजी बीजों से ऊगे
शस्त्र समान विचार

अंतिम आहुति पूर्ण हुई अंतिम कर लाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ

सहसा विष के दीप बुझ गये
बुझे गरल तूफान
भस्म हुआ तम, कर प्रकाश की
रक्त-अग्नि का पान

तप मे रची हड्डियो से
जन वज्र हुआ निर्माण
मिट्टी नवयुग, तन का हर कन
रवि की नई उठान

तुमने मर कर मृत्यु मिटा दी विश्व निहाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायकाल हुआ

[बापू के निधन पर]

बरफ़ का चिराग़ :

[६ मार्च १९४८]

हिम के सफेद दीपक की लौ अब हुई लाल
सदियों से जमी हुई मिट्टी बन गई ज्वाल

यह कमल धरा का बरफीला
यह झील कटोरा चमकीला
ठंडे खेतो का कुसुम बदन
केसर की झाँईं से पीला
लालिम चिनार के पेड़
घाटियों के प्रहरी
नभ के पर्दे पर
रेखा-छांह छपी गहरी

उठ रही शैल मालाएँ
सदियों से जवान
हर मजिल खिची हुई है
फूलो की कमान

गोरे मुख पर उडता है
हल्का पवन चीर

है स्वर्ग एक कल्पना
सत्य है काशमीर

सूरज सोने का फूल
चाँद हिम का चिराग
उस दूध धुली मिट्टी से
अब उठ रही आग

बनकर शमशीर उठी जनता
बजता परबत का नक्कारा
नदियाँ बिजली बन उतर पडी
हो गया लाल ध्रुव का तारा

धरती के यह जन-फूल उठे बनकर मशाल
हिम के सफेद दीपक की लौ अब हुई लाल

इन चदन की सीमाओ में
आ गया एक दुर्धर्ष नाग
पड गया बरफ के आन्चल पर
मासूम खून का लाल दाग
यह महादेश का शुभ्र कलश
लहराया इस पर नव केतन
जो जीवन मृत केचुल सा था
वह आँखे खोल हुआ चेतन

गिरि में निमग्न मनु की आत्मा
जब उठ आई कर सिंहनाद
पथ की रज लेने उतर पडा
सिंहासन से सामंतवाद

आघात हुआ यह
अचल हिमाचल के तन पर
जन उन्नायक प्रलयंकर
शंकर के मन पर

जो अग्नि ला रही है जग मे
नूतन कृतांत
वह कर देगी यह विष भी
भस्मीभूत शांत

बस इसीलिए झुक सका नही यह दग्ध भाल
हिम के सफ़ेद दीपक की लौ अब हुई लाल।

आग और फूल :

[मई १९४८]

निकलती ही जा रही घड़ियाँ सुनहली
आयु के सबसे अधिक उज्ज्वल चरण की
ग्रीष्म के उस फूल सी
जिसकी नई केसर हवा ने सोख ली
वह आग की पीली शिखा
नीले धुएँ की धारियाँ घेरे रही
जिसके प्रथम आलोक को
सीमांत में जिसके रहे
पर्वत अंधेरे के खडे
सुनसान की आवाज
आती ही रही नेपथ्य से
जो निगल जाना चाहती थी
जिंदगी के गीत को

ज्वालामुखी के द्वीप सा
संघर्ष का यह लोक है
हिलती हुई धरती यहाँ
हिलते हुए आधार है
कमजोर मिट्टी की जड़े

जमकर न जम पाती कभी
उठते बगूले दर्द के दुख के यहाँ
हर लहर पर आते नये भूचाल हैं
उजड़ा पड़ा यह द्वीप बिकनी की तरह
फिर फिर सदा
संघर्ष का अणुबम यहाँ जाँचा गया

यह व्यक्ति और समाज का
उत्तप्त मंथन काल है
संक्रांति की घड़ियाँ बनी हैं शृङ्खला
बंदी हुई है देह
मन को बाँधने बढ़ते पतन के हाथ हैं
है फेन विष का फैलता ही जा रहा
अब डूबता अतिम ग्रहण की छाँह मे
आलोकहत नक्षत्र मिट्टी से बना
जिसका कि पृथ्वी नाम है

बस इसलिए उजड़ी धरा
यह फूल सूखा ही खिला
केसर बिना
वह आग की पीली शिखा
धुँधली रही, मंदी रही
उज्ज्वल न पूरी परिधि को जो कर सकी

वह भस्म कर पाई नही
नीले धुएँ को व्योम से

वह भूमि किंतु न मिट सकी
आगत फ़सल की राह मे
वह फूल मुरझाया नही
ऋतु रग लाने के अमर विश्वास में
वह आग की पीली शिखा
उठती रही जलती रही
आलोक कन तम से बचा
वह अग्नि बीजो को सतत बोती रही
फिर से नया सूरज उगाने के लिए

रात हेमंत की :

[२ जनवरी १६४६]

कामिनी सी अब लिपट कर सो गई है
रात यह हेमंत की
दीप-तन बन ऊष्म करने
सेज अपने कंत की

नयन लालिम स्नेह दीपित
भुज मिलन तन-गंध सुरभित
उस नुकीले वक्ष की
वह छुवन, उकसन, चुभन अलसित

इस अगरु-सुधि से सलोनी हो गई है
रात यह हेमंत की
कामिनी सी अब लिपट कर सो गई है
रात यह हेमंत की

धूप चदन रेख सी
सल्मा-सितारा सांझ होगी
चाँदनी होगी न तपसिनि
दिन बना होगा न योगी

जब कली के खुले अंगों पर लगेगी
रंग-छाप वसंत की
कामिनी सी अब लिपट कर सो गई है
रात यह हेमंत की

धूप का ऊन :

[४ जनवरी १६४६]

वज रहे ठंडी सुवह के आठ
दिन भी चढ गया है
उतरती आती छतो से
सर्दियो की धूप
उजले ऊन की मृदु शाल पहिने
वह मुँडेरों पर ठहरकर
झाँकती है झँझरियो से
रात के धोये हुए उन आँगनो मे
और अलसाये हुए
कम्बल, लिहाफो, बिस्तरों पर
जो उठाये जा रहे है
रात की मीठी कथा के
पृष्ठ पलटे जा रहे है

धुले मुख सी धूप यह गृहिणी सरीखी
मंद पग धर आ गई है
चाय की लघु टेबिलो पर
कभी बनती केतली की
प्यालियों की भाप मीठी

कभी बनती स्वयं ही
रसधार ताजे दूध की
या ढाल कर निज प्यार
वह हर वस्तु की बनती समस्त मिठास
अधरों पर पिया के

सुबह के अख़बार की वह नई खबरें
अब पुरानी हो गई हैं
सुर्खियो के रग मद्धिम पड़ गये है
गुलभरी सिगरेट के अंतिम धुएँ से
उड गईं वे पताका सी सूचनाएँ
मिट गये हैं नक्श नकली अक्षरों के
रह गये है अक्स असली सूरतो के
नित नये वक्तव्य के जो लगा चेहरे
ओढ़कर रंगीन वादों के लबादे
अक्स जिनके
शीश महलों से उतरते नित्य
ठंडे टाइपों की सीढियो से
सब्ज बाग़ो को दिखाकर
हर जगह डेरा जमाते
चेतनाओं को दबाने
दूर करने दिन नई दुनियाँ नये इंसान का

बस इसलिए दिखते वही चेहरे
सदा बदरंग चेहरे
इसलिए कडवी हुई है
जिदगी की सब मिठासे
सर्दियों की सुबह के वह रंग
रुकते ही नही है
ऊन सी यह धूप की गरमी मुलायम
है खिला पाती न जीवन फूल को
और चौकों से उठी वह गंध सोंधी
भूख तन मन की मिटा पाती नही है
जल रहे है कोटि चूल्हे
किंतु है इंसान भूखा
जल रही है आग
फिर भी आज तक इंसान भूखा
इसलिए जलते रहेगे
उस समय तक आग को बुझने न देगे
आयगा जब तक न मिट्टी से उजला
सर्दियो की धूप का मृदु ऊन
फैलेगा न घर घर ।

मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयो :

[६ अप्रैल १९५०]

चैत के अंतिम चरण की
साझ धुंधली हो गई है
ग्रीष्म की परछाँइयों से
धूल की हल्की सफ़ेदी से गगन में
रंग मद्धिम पड़ गया है
पीत मिट्टी से बने
हल्दी रचे
गहरे सुनहले चंद्रमा का
संधि क्षण यह ऋतु मिलन का
है धरा का बदन ठंडा
चाँदनी के खुले तन पर
है न कोई वस्त्र भीतर
पहिनकर वह हवा की
बारीक लहरोंदार चूनर
दिख रही जिससे बदन की नागकेसर
उँगलियो मे छुवन भरती
इस अकेले शयन गृह मे
आ गई चुपचाप
जैसे पंखुरी हो मंदे झरती

आज मुझपर रंग अंकित हैं न ऋतु के
चाँदनी की कली खिलती
मुरझ जाती
साँझ जैसे फूल कितने
फूल कर कुम्हला गये हैं
मोरपंखी रात आकर निकल जाती
शीत माथे पर धरा के
है उदासी के धुँधलके
खोखले है क्षितिज दिखते
हो रहे है चाँद मंदे जिदगी के

मौन है वातावरण
ज्यों मौन है मन
मौन है वह सिधु स्वर मेरा पुराना
दब रही आवाज मन की देह की भी
इस उदासी के धुएँ मे
संधि-युग के बादलो मे
दब गया ध्वनि का प्रभंजन
टूटती वाणी अकेली
ज्यों अकेली लहर आकर
टूट जाती पत्थरों मे

यह न युग है भावना का
स्वप्न का या कामना का
रूप रस की कल्पना का
रंग लाती ऋतु हजारो
पर न धरती रग डूबी
रसवती वह कली खिलती
किंतु लगती विरस रूखी
है सितारे डालते छाया सुनहरी
चॉदनी से भरी राते
पर न लगती चाँदनी की
क्योकि यह सक्राति की वेला घिरी है
सधि-युग के पत्थरो पर
एक गहरी गूँज बनकर
उठ रहा सघर्ष का स्वर
तू धुआँ बनकर रहेगा और कब तक
एक क्षण जल जा भभक कर ।

न्यूयार्क की एक शाम :

[अक्टूबर १९५०]

देश काल तज कर मैं आया
भूमि सिंधु के पार, सलोनी
उस मिट्टी का परस छुट गया
जैसे तेरा प्यार, सलोनी

दुनियाँ एक मिट गई, टूटे
नया खिलौना ज्यों मिट्टी का
आँसू की सी बूँद बन गया
मोती का संसार, सलोनी

स्याह सिंधु की इस रेखा पर
है झिलमिली तिलिस्मी दुनियां
हुमक उमगती याद फेन सी
छाती मे हर बार, सलोनी

सभी पराया सभी अचीन्हा
रंग हजारो पर मन सूना
नभ-भवनो मे याद आ रहे
वे कच्चे घर द्वार, सलोनी

गालों की गोराई जैसा
यह पतझर का मौसम आया
झरी उमगें मेपिल सी
सुख-सेब झरे छतनार, सलोनी

धन, विलास, मद, नृत्य, केलि, रस
ऋतु रोमानी तन रोमांचित
कहीं नयन मिल होते शीतल
अपने मन अंगार, सलोनी

मैनहैटन :

[अक्टूबर १९५०]

यह पाताल
नागलोक यह
यह धरती का छोर आखिरी
कोसों लंबी झिलमिल करती
तट-रेखा से
सिधु कुहर उठता लहरीला
हल्का नीला
लिपट रहा है नभ-भवनों के
अनगिन वातायन से झरते
नक्षत्रो जैसे प्रकाश से
पिड, पिड पर
राशि, पुंज पर
छाया पर छाया पडती है
भीमकाय गृह-आकारों की
लाल दमकते पार्कवेज
हो रह दीप्त एम्बर-प्रकाश से
नभ मे खिचे ज्योति के मंडल
तिरछी उठकर पड़ती है प्रकाश-धाराएँ
नियन-गैस रंजित शीशे
चिकनी इस्पाती धातु

लौह ढाँचे
उठते घर
महाकाय दुहरे तिहरे पुल
भवनो के ऊपर से चली जा रही सड़कें
है स्काईवेज अधर मे
लंबे बुलीवार्ड
लॉनो के हरे हाशिए
स्वप्न भरे रंजित निवास-गृह
फ्लैट, सुइट
डाउन-टाउन के चमत्कार
ज्यों जादू का संसार
सत्य साकार
धरती नदियों के तल मे
चलती है रेले
है रैनहीन सबवेज
जहाँ से लाती ले जाती जीवन
बिजली की चलती हुई सीढ़ियाँ अंतहीन

जीवन द्रुत चरणों से चलता
जीवन धारा बहती है गतिवान यहाँ
ज्यों ईस्ट और हडसन मिलती है सागर से
जिनके स्निग्ध आलिंगन मे
तारों सी बिम्बित बाहो में

है आँखमिचौनी खेल रही
छाया प्रकाश की यह नगरी
यह विभव विलासवती साम्राज्ञी रजनी की
फैली यथार्थ के विस्मय सी
यह मायापुरी
कि जैसे सजी कामकन्या
जादूगरनी अप्सरी
पास जो सदा बुलाये
हाथ जो कभी न आये

यह सोने की दुनियाँ
यह कंचन लंका, पाताल
धरा का सारा सोना
खिच आया इस नागलोक मे
चलता है विज्ञान चरण विद्युत के रखकर
नये तिलिस्मी रूप धार कर
जैसे चलते विद्युत-अक्षर
समाचार, सुर्खियाँ, पक्तियाँ
चमकीले टाइम्स-स्क्वैर मे
संवादों के वाक्य चल रहे
युद्ध कहाँ पर
मृत्यु कहाँ पर
है अकाल का नृत्य कहाँ पर

लक्ष लक्ष टन अन्न कहाँ पर
है अशाति हित चक्र कहाँ पर
और शाति हित रक्त कहाँ पै
कितने सैनिक ख़त्म हो गये
कितने अभी और बाक़ी हैं
कितने अरबों का तख़मीना
कितने खरबो की तैयारी
रॉकेट, जैट, उडन-बम बोले
शाति हमारी, शाति हमारी
और भभक कर
महाशक्ति बोली यो अणु की
मृत्यु हो चुकी है भविष्य की

किंतु नही
मिट सका कभी न भविष्य मनुज का
जग का वैभव रचनेवाले ज्योति मनुज का
अणु का नाग नाथने वाले महामनुज का
अणु की अग्नि-गरज मे भी
यह ध्वनि उठती है
जीवन मे जीने का बल है
मनु की धरती अजर अमर है
जयति मृत्यु मरते भविष्य की
जय हो जीवन के भविष्य की।

न्यूयार्क में फॉल :

[२८ अक्टूबर १९५०]

थम गई बरसात नम
आ गया है नायलॉन सा पारझीना
यह खुला मौसम
मनोरम फॉल का मौसम
हिमानी रात
ठंडी धूप का मौसम
समुद्री हवा पर उडता हुआ
पत्तों भरा ऑटम

सात काले समुंदर पार
गोरे नाग की रानी
सात काले समुंदर पार
यह पाताल का पानी
हज़ारो मील दो जलखंड पर
ठंडे भँवर की कुडली
भुजंगी फेन पर बैठी
धरा यह चंचला मरमेड सी
समुद्री रेत का सीमात
सिल्वर-मिन्क सा फैला
खुला उभरा भरा तन
कसी नीची स्नान–स्कैंटी

सूर्य ऊपर खिला
जिसके बदन के रंग जैसी धूप का
रस ले रही लेटी धरा

वैभव रचे इस लाल तन पर
आवरण का काम क्या
जब खुल गया दिन
भाप से बादल हटे
फेंका हवा ने धुंध का
जल-तोड़ प्लास्टिक नील मैकिन्टोश
लो अब खुल गई है
मैनहैटन की गगन-रेखा
चमकते स्वप्न से
सौ खंड के
वे चारख़ाने जड़े
झिलमिल चाँदियों के क्यूब से
साँचे बने
नभपोंछ 'स्कैपर

पर मैं दूर
कितने योजनों के दूर
कोसों, मंजिलों, क्लोमीटरों, लीगों
हवाइ मील, फैदम, नॉट

रयऽल, दीनार, ड्रौमा, मार्क
लीरा, फ्रांक, पेसेटा
डालर, पौड--
जिनके वृत्त मे घिरतीं
टच्यूनिक वर्दियाँ फौजी
चमकते बैज
नीले, लाल, पीले रिबन
नभ मे सर्चलाइट के
भयानक घूमते मंडल
सुनहरे सूत्र सचालित
कि डोरे खिच रहे जिनके
सात काले समुदर पार
हवा को फाडते जाते
उड़न बम भर बड़े बममार
लगाने सभ्यता मे आग
कि जिनकी चील सी छाया
किये है सब गगन काला
खिची है एशिया औ' हब्श
योरप, शांत सागर पार

नीचे वाल्ज आर्केस्ट्रा
रम्बा, जाज की धुन पर

नंगी नाचती टाँगे
चलते पीप-शो, वर्लेस्क
ढलते पैग
अधिक रंगीन होती रात
उठते वक्ष, खुलती बाँह, गोरी जाँघ
अधिक रंगीन हो जाते
स्ट्रिप्टीज और बॉक्सिंग मैच
संस्कृति ठहर जाती है
बैले के बवंडर में

सुनहरा धुंध फैला है
चलती जा रही जिसमे
रंग की चूनरे, कुर्ती
अमामा, नाक तक बुर्के
भारी कोट, लहरते स्कर्ट
काले नैट, बौनेट, वेल
उभरे स्लैक्स
हल्की नाइटी
रेशम सुनहरे बाल
प्रेयसि, कामिनी, गुलनार
मदामाजेल, सिन्योरिना, स्वीटी, हनी
सोने का सुनहरा धुंध
मुझसे दूर

समय आगे बढ़ा जाता
समय पीछे रहा जाता
समय का भान मिट जाता
केवल दीखती मायावती की छाँह
गोरे नाग के फन सी
सब कुछ दूर
मिट्टी का परस भी दूर
शरद की चाँदनी भी दूर
मन पर आवरण गहरे
बहुत भारी बहुत भूरे
तन मन हो रहे सूने
झरे ज्यों पात मेपिल के
मन पर छा रहा ऑटम
समुद्री हवा पर उड आ रहा
पत्तों भरा मौसम ।

चाँदनी गरबा :

[१४ अक्टूबर १९५१]

उजला पाख क्वांर का फूला कास सा
खिली चँदीली रात कि कली सुहावनी
नरम नखूनी रंग धुले आकाश मे
छिटक रही है पूरनमा की चाँदनी

उडती भीनी गंध हवा में दूब की
बिखरा सोई ,कोरे कुतल कामिनी
खुली ओस मे बिछी दूधिया सेज सी
पानी सी ठंडी है ऋतु मनभावनी

आसमान मे भरा श्वेत रस सोम का
नयनों मे मदभरी ललोई झूलती
हिम के मृग भर रहे चौकड़ी चाँद मे
नवल नारि सी अलस केतकी फूलती

उभरे रोएँ छुवा गई है चाँदनी
सीग नुकीले चुभा गई है चाँदनी
चचल नयनी गोरी हिरनी चाँदनी

सिंधु तट की रात :

[कोनी आइलैंड, न्यूयार्क का सुधि चित्र]

[२७ नवम्बर १९५१]

कार्तिक की पंचमी
है पंचमी की चाँदनी
पंचमी की चाँदनी में
याद आती है
चाँदनी हल्के कुहर के
साथ आती है

ये अधूरे चाँद का
ऐपन रँगा मंडल
गौर माथे पर गिरे, उड़
चंपई कुंतल
हो रही ठंडी हथेली
छू अलकदल को
सिंधु मे डूबी हवाएँ
हो गईं शीतल

साँझ की सुधि मे
हंसी सी आ गई होगी

बर्फ की पहली रुई भी
छा गई होगी
बाँह पर उडता
गले का रेशमी रूमाल
द्वीप पर आकर लहर
छितरा गई होगी

चाँद के सँग दूर की
वह रात आती है
चाँदनी हल्के कुहर के
साथ आती है

भीगता रस
भीगती मुसकान
किंतु सुधि होती अधिक रसवान
और मोती की मधुर पहिचान
भी
मोती गये के बाद आती है

पंचमी की चांदनी मे
याद आती है
चादनी हल्के कुहर के
साथ आती है

दिवालोक का यात्री :

[दिसम्बर १९५१]

छोड आया तू सुधामय मजिलो को
भूल से खोये चमकते भूतलो को

सामने पथ था हटे जीवन-कुहर थे
चमकते आकाक्षाओ के शिखर थे
मिट गये थे बद घेरे जिदगी के
सिधु थे फैले नये नभ थे उभरते

चल पडा तू छोड़ पिछले संबलों को
भूल से खोये चमकते भूतलो को

जिदगी के स्वप्न उस दिन द्वार आए
कामना पर कामना के लोक पाए
स्वर्ग के दीपक जले थे आगमन को
किंतु तूने स्वर्ग के दीपक बुझाए

ज्योति छोडी ले नरक के काजलो को
भूल से खोये चमकते भूतलो को

धूल था तू धूल ने तुझको खिलाया
उम्र भर मे एक अवसर मुसकराया

जिंदगी मे जब घिरा भीषण अंधेरा
जिंदगी के तब उजाले ने बुलाया

तू समझ पत्थर चला मुक्ताफलो को
भूल से खोये चमकते भूतलो को

तू उड़ा संपाति का अभिमान लेकर
सूर्य छूने का नया अरमान लेकर
तेजमय रवि व्यास जब आया निकटतर
पंख झुलसे गिर पडा हत प्राण लेकर

तू चला पाताल छूकर बादलों को
भूल से खोये चमकते भूतलों को

एक ही पथ है कि जिसके छोर दो है
विष इधर है उधर अमृत, मोड दो है
तू सुधा का छोर छूकर लौट आया
रह गये विष-लोक अंध अछोर जो है

भोग अब अपनी पराजय के फलो को
भूल से खोये चमकते भूतलो को

आज तेरी विवशता पर रात रोती
दिवस रोता, धूप रोती, साँझ रोती

ग्लानि की मन में भरी बरसात रोती
आंसुओं के चरण धर हर बात रोती

अब मलेगी आयु खाली करतलों को
भूल से खोये चमकते भूतलों को

जिदगी का महल खँडहर हो गया है
रात कोई आँसुओं से धो गया है
मौन अब रहना पड़ेगा जिदगी भर
क्योंकि तेरा गीत भी अब सो गया है

सो गया वह जो हिलाता था दिलों को
भूल से खोये चमकते भूतलो को

आँसुओं के पंथ पर अब तू चला चल
डालकर पर्दा हँसी का ढाँक दृग जल
भस्म हो व्यक्तित्व जीवन राख होवे
भस्म होने तक नये दीपक जला चल

पंक बनकर भी खिला तू उत्पलो को
भूल जा तू दूर की उन मंजिलो को

याज्ञवल्क्य और गार्गी :

मोनोलॉग

[६ दिसम्बर १९५१]

प्रश्न मत पूछो
निरुत्तर हूँ

हाँक कर ले जाव तुम
सारी दुधारू गाय
स्वर्ण मुद्राएँ समेटो
फेंक दो काषाय
क्योंकि अब अव्यक्त, अक्षर
सूक्ष्म, निर्गुण तत्त्व मे
जीवित धरा मे
रण ठना है
हो गया है फिशन अणु का
परम ब्रह्म अनादि सनु का
(यदि कहीं हो
सदा जय हो)
आत्मा का बम बना है
अभी थोड़ा कम बना है

ब्रह्म ने भी खूब बदला नाम
लोक हित में पर न आया काम

नये साल की साँझ :

[१ जनवरी १९५२]

ये नये साल की है साँझ नई
एक ओर रवि की किरन उजल के डूब गई
उठ रहा है वह नया दूज का चाँद
हँसिया चाँद सोन हँसली सा
लालिमा साँझ की सिमट सारी
जा रही साँवले मैदानो से
जैसे घर लौटती किसान बहू
काम दिन भर का करके खेतों से
लाल मुँह हो रहा है मेहनत मे

कच्ची मिट्टी से भरे
साँवले रसीले हाथ
जिनमें पहने है लास के कंगन
हाथ मे चाँद सा चमक हँसिया
काटता है जो फसल कुहरे की
बादलों की अंधेरे की
तैरते आँयँ जो हवाओ मे

और नीबू की तरह ही कटे नजर काली
जो कि गदराई फसल पर है लगी

छीन लेन को कली, फल, फलियाँ
वालियाँ नाज की हर साल पकी
जिससे फिर उडते रहे
खेत हरे पंख लगा
और खलिहान की नई जाजम पर
नाज की चाँदनी का ढेर लगे
गाड़ियाँ हर वरस की आँयँ भरी
हाँक कर लाँयँ जिन्हे
चाँद सुरुज के वीरन
तव उगे दोज
नये खेत
नदी के तीरन !

मिट्टी के सितारे :

[रुबाइयाँ]

[जनवरी १९५२]

कल थे कुछ हम, बन गए आज अनजाने है
सब द्वार बंद, टूटे संबंध पुराने हैं
हम सोच रहे यह कैसा नया समाज बना
जब अपने ही घर मे हम हुए बिराने है

है आधीरात, अर्ध जग पडा अँधेरे मे
सुख की दुनियाँ सोती रंगो के घेरे मे
पर दुख का इंसानी दीपक जलकर कहता
अब ज्यादा देर नही है नये सवेरे मे

हम जीवन की मिट्टी मे मिले सितारे है
हम राख नही है राख ढके अंगारे है
जो अग्नि छिपा रक्खी है हमने यत्नो से
हर बार धरा पर उसने प्रलय उतारे है

है दीप एक, पर मोल सूर्य से भी भारी
है व्यक्ति एक वर्तिका, दीप धरती सारी
देखो न दुखी हो व्यक्ति, उठे इंसानी लौ
वनखंड जलाती सिर्फ़ एक ही चिनगारी

है झंझा पथ, पद आहत, दीपक मद्धिम है
संघर्ष रात काली, मंजिल पर रिमझिम है
लेकिन पुकारता आ पहुँचा युग इंसानी
दो कदम रह गया स्वर्ग, चढाई अंतिम है

दीपक, तेरे नीचे घिर रहा अंधेरा है
सोने की चमक तले अनीति का डेरा है
तू इंसानी जीवन की रात मिटा, वर्ना
इंसान स्वयं बनकर आ रहा सवेरा है

: तीन ऋतु-चित्र :

: एक :

नैन हुए रतनार गुलाब से अंग खिले कचनार कली
फूले पलाश सी
पूनम आई
चाँद के अंक में
रैन समाई
कुंद कपोलों पै
फैली ललाई
केसर चुंबन से हुए रंजित अलसित तन चिकने कदली
कर में मसल गये
फूलों के कंगन
रंजित तन पै
मसल गये फागुन
उभरे लिपटकर
चीर सुहावन
छिटकी चमेली सी भुज बंधनों मे चमके नयन हँसती बिजली

: दो :

चाँदनी हुई लाज से लाल

उड़ाती आँचल सुमन समीर
खुले लालिम तन-दीपित चीर

लगी अगो पर अधर अबीर

मालती गंध भरे भुजबंध
सिमट तन हुआ फूल की माल

चाँदनी हुई लाज से लाल

आज मसले हैं मलय दुकूल
मसल कर चिपक गये कनफूल
उड़ी केसर कपूर की धूल

हुए मिलकर रतनारे नैन
हटाये जब घुंघराले बाल

चाँदनी हुई लाज से लाल

: तीन :

आज फूल रही कचनार
श्याम नही महलों मे
सखी साजे बसंती सिंगार
सेंदुर भरे अलको मे

चांद के सँग हँसें
बात कहते रुकें
बाँह छोड़ें कसें

कामिनी-गंध जैसी उमर न समाय
रेशम चीर सुनहलों में
आज फूल रही कचनार
श्याम नही महलों में

आये उड़ उड़ पवन
करे ठडा बदन
रूखे फीके नयन

बीती जाए बसंती बहार
रैन बीते पलकों मे
आज फूल रही कचनार
श्याम नही महलों मे

पूरब की किरन :

[२६ जनवरी १६५२]

पूरब मे ज़िंदगी की उठ रही किरन
ओ भविष्य सूर्य, धरो मुक्ति के चरन

है अतीत रैन मलिन
दीपक इतिहास का
पीत प्रभा जीवन
अवरुद्ध पथ विकास का

दीप बने सूर्य करें नवजन वंदन
ओ भविष्य सूर्य, धरो मुक्ति के चरन

मिट्टी से उठ रहा
नया समाज
पदतल की धूल है
सुमेरु आज

कोटि मनुज कष्टों के टूटें बंधन
ओ भविष्य सूर्य, धरो मुक्ति के चरन

जनसुख की नींव धरे
यह नया विहान
दुख, विनाश, युद्ध की
खिंचे न फिर कमान

आदमी रचे नये समाज का भवन
ओ भविष्य सूर्य, धरो मुक्ति के चरन

पृथ्वी प्रियतम :

[जनवरी १९५२]

आओ वसंत के प्रथम चरण
पतझर मे जीवन के दर्शन
दिन हों पलाश से अरुन वरन
राते रतनारी चन्द्र वदन
रस, गंध, परस, स्वर, सृजन व्रती
तुमसे धरती है सुमनवती

यह मदन धनुष सा वंक चन्द्र
है पंचकुसुम पंचमी कला
रति के गोरे रोचन तन सी
खिल रही कपूरी चन्द्रप्रभा

हैं फूल भरे भुजबंध
उड रहा मलय पवन सा उत्तरीय
किंशुक तल सी काली अलकें
तिल सुमन खिला मुख शोभनीय

सरसों के पीले खेतों पर
तुम उतरो धरकर चरण कुसुम

हे सृजन-मदन की सुरभि श्वास
आओ हे पृथ्वी के प्रियतम

फिर से धरती को फुल्ल अशोक बनाओ
फ़सलों की पकी गंध वनकर तुम छाओ
निर्माण वीज युग के पतझर से लेकर
तुम नवयुग का रंगोत्सव नया रचाओ

रात है :

[सितम्बर १९५२]

रात है
सो गई दुनियां थकन से चूर
नीद मे भरपूर
कुछ क्षणों को
जिंदगी की विषमता
कटुता हुई है दूर
एक सी आँखे सभी की
एक सी है रैन
जागती आँखे उसी की
है न जिसको चैन
मै नही यह चाहता
सोता रहे जग
हो सदा ही रैन
चाहता हूँ किंतु कर्मठ दिवस में भी
नीद सा हो चैन

तैतीसवीं वर्षगांठ :

[१६ अगस्त १६५२]

उम्र की इस सीढ़नी मीनार पर
मंज़िले मैंने तिहाई पार की
ज़िंदगी को खींचकर लाते हुए
राह की सौग़ात सारी वार दी

और भी ऊँची चढ़ाई सामने
और भी भारी लड़ाई सामने
यह भयानक खोखली मीनार है
शक्ति देता सिर्फ़ तेरा प्यार है

साँस लेने मैं रुकूँ तुम प्यार दो
मन, नयन, तन, अधर की रसधार दो
शक्ति दो मुझको, सलोनी, प्यार से
लड़ सकूँ मैं जुल्म के संसार से

बाँह गोरी मनुजता की ध्वज बने
छाप तेरे अधर की सूरज बने
फिर उमड़ते प्यार की दृढ ढाल दो
फिर नयन मेरे नयन मे डाल दो

लाल आँचल से पसीना पोंछ दो
बाल पतली उँगलियों से ओछ दो
उम्र की सारी थकान उतार दो
देह पर हथियार नये सँवार दो

क्योंकि जीवन पर खिची तल्वार है
दैन्य, दुख, अन्याय, अत्याचार है
आदमी पर आदमी का वार है
विश्व नैतिकता पतन के द्वार है

आज दुनियाँ के करोड़ो आदमी
सह रहे है धूप, सर्दी, औ' नमी
जिदगी का एक भी साधन नही
उम्र तपती धूप है, सावन नही
जन्म दिन की क्या खुशी होगी उन्हे
जिदगी है मृत्यु से भारी जिन्हे
भूख, बीमारी, ग़रीबी, गंदगी
कौड़ियों के मोल बिकती ज़िदगी
आदमी का मिट गया सम्मान है
मनुजता का अब न गरिमा गान है
वह नही इंसान की है सभ्यता
स्वार्थ, लालच, युद्ध जिसके देवता
मूलधन हिंसा, गुलामी सूद है
आदमी बंदूक की बारूद है
जब जगत को चाहिए फुलवारियाँ
हो रही तब युद्ध की तैयारियाँ
फिर धरा-सीता सताई जा रही
फिर असुर संस्कृति जमाई जा रही

मिट रही रंगीन जीवन की छटा
छा रही हिंसक मशीनी घन घटा
आज जीवन को चुनौती मौत की
नीति क़ैदी है कुटिल कलधौत की

है ग़नीमत हम न सड़को पर गिरे
भूख रोगों से नही अब तक मरे
है यही क्या कम कि औसत उम्र से
ज़िदगी के दस बरस ज़्यादा हुए
विश्व मे जब कुटिलता है, त्रास है
सत्य शिव का तब हमे विश्वास है
और है विश्वास जन कल्याण का
रंग, रस का, त्याग का, बलिदान का
फिर कंटीली दृष्टि रंजित प्यार दो
आदमी की शक्ति का आधार दो
प्यार तुमसे हो जगत से प्यार हो
प्रेरणा यह रंगमय संसार हो
शक्ति दो मुझको, सलोनी, प्यार से
लड़ सकूं मै मौत की ललकार से

चंदरिमा :

[एक इम्प्रेशन]

[२७ सितम्बर १९५२]

यह झकाझक रात
चाँदनी उजली कि सूई मे पिरोलो ताग
चाँदनी को दिन समझ कर बोलते हैं काग
हो रही ताजी सफेदी नये चूने से
पुत रहे घर द्वार
चाँद पूरा साफ
आर्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल
चिकनी चमक का दलदार
यह नही चेहरा तुम्हारा
गोल पूनम सा
मांसल चीकने तन का
क्योंकि यह तो सामने ही दिख रहा है
रुक रहा है
यह नही अब तक हुआ
बरसों पुरानी बात
भूली याद

ढाकवनी :

[३० नवम्बर १९५२]

लाल पत्थर लाल मिट्टी
लाल कंकड़ लाल बजरी
लाल फूले ढाक के वन
डांग गाती फाग कजरी

सनसनाती साँझ सूनी
वायु का कठला खनकता
झींगुरों की खंजड़ी पर
झांझ सा बीहड़ झनकता

कंटकित बेरी करोंदे
महकते है झाब झोरे
सुन्न है सागौन वन के
कान जैसे पात चौड़े

ढूह, टीले, टौरियो पर
धूप-सूखी घास भूरी
हाड टूटे देह कुबडी
चुप पडी है गैल बूढी

ताड, तेंदू, नीम, रेंजर
चित्र लिखी खजूर पातें
छांह मदी डाल जिन पर
ऊगती है शुक्ल सातें

बीच सूने में
बनैले ताल का फैला अतल जल
थे कभी आये यहाँ पर
छोड़ दमयंती दुखी नल

भूख व्याकुल ताल से ले
मछलियाँ थीं जो पकाईं
स्राप के कारन जली ही
वे उछल जल में समाईं

है तभी से सांवली
सुनसान जंगल की किनारी
हैं तभी से ताल की
सब मछलियाँ मनहूस काली

पूर्व से उठ चाँद आधा
स्याह जल मे चमचमाता
वन चमेली की जड़ों से
नाग कसकर लिपट जाता

कोस भर तक केवड़े का
है गसा गुजान जंगल
उन कटीली झाड़ियों मे
उलझ जाता चाँद चंचल

चाँदनी की रैन चिड़िया
गंध फलियों पर उतरती
मूंद लेती नैन गोरे
पांख धौरे बद करती

गध घोड़े पर चढी
दुलकी चली आती हवाएँ
टाप हल्के पडें जल मे
गोल लहरे उछल आएँ

सो रहा वन ढूह सोते
ताल सोता तीर सोते
प्रेतवाले पेड़ सोते
सात तल के नीर सोते

ऊघती है रूंद
करवट ले रही है घास ऊंची
मौन दम साधे पड़ी है
टौरियों की रास ऊंची

सांस लेता है बियाबाँ
डोल जातीं सुन्न छाँहे
हर तरफ गुपचुप खडी है
जनपदों की आत्माएँ

ताल की है पार ऊंची
उतर गलियारा गया है
नीम, कंजी, इमलियों में
निकल बजारा गया है

बीच पेडों की कटन में
है पड़े दो चार छप्पर
हांडियाँ, मचिया, कठौते
लट्ठ, गूदड़, बैल, बक्खर

राख, गोबर, चरी, औगन
लेज, रस्सी, हल, कुल्हाडी
सूत की मोटी फतोई
चका, हंसिया और गाड़ी

धुँआँ कंडों का सुलगता
भौकता कुत्ता शिकारी
है यहॉ की जिदगी पर
शाप नल का स्याह भारी

भूख की मनहूस छाया
जब कि भोजन सामने हो
आदमी हो ठीकरे सा
जबकि साधन सामने हो

धन वनस्पति भरे जगल
और यह जीवन भिखारी
शाप नल का घूमता है
मौथरे है हल कुल्हाडी

हल कि जिसकी नोक से
बेजान मिट्टी झूम उठती
सभ्यता का चाँद खिलता
जंगलो की रात मिटती

आइनों से गाँव होते
घर न रहते धूल कूड़ा
जम न पाता जिंदगी पर
युगों का इतिहास-घूरा

मृत्यु सा सुनसान बनकर
जो बनैला प्रेत फिरता
खाद बन जीवन फसल की
लोक मंगल रूप धरता

रंग मिट्टी का बदलता
नीर का सब पाप घुलता
हरे होते पीत ऊसर
स्वस्थ हो जाती मनुजता

लाल पत्थर, लाल मिट्टी
लाल कंकड़, लाल बजरी
फिर खिलेंगे ढाक के वन
फिर उठेगी फाग कजरी

ऑटोग्राफ :

[१ जनवरी १९५३]

है वही जिंदगी का दर्द
है संघर्ष वही
हर नया साल
आता है पुराना बनकर

गीत

[२९ मार्च १९५३]

छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

जीवन मे है सुरंग सुधियाँ सुहावनी
छबियो की चित्र-गंध फैली मनभावनी
तन सुगध शेष रही बीत गई यामिनी
कुंतल के फूलों की याद बनी चाँदनी

भूली सी एक छुवन
बनता हर जीवित क्षण
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

यश है, न वैभव है, मान है, न सरमाया
जितना ही दौड़ा तू उतना ही भरमाया
प्रभुता का शरण-बिम्ब केवल मृगतृष्णा है
हर चंदिरा मे छिपी एक रात कृष्णा है

जो है यथार्थ कठिन
उसका तू कर पूजन

छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

द्विविधाहत साहस है दिखता है पंथ नही
देह सुखी हो पर मन के दुख का अंत नही
दुख है न चाँद खिला शरद रात आने पर
क्या हुआ जो खिला फूल रस-वसंत जाने पर

जो न मिला भूल उसे
कर तू भविष्य वरण
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

देह की आवाज़ :

[२६ जुलाई १९५३]

मन ने शरीर से पूछा
क्यों है इतना आकर्षण
रसमय चुंबकमय कसी देह का
चिकने मॉसल तन का
उस नोकीली रंगीन नजर का
लालच चंद्रानन का
भोले ओठो के आसपास
वह एक गुलाबी सा मडल
प्रतिपल खिलता वह आयु कमल
क्यों इस वीनस से
तन का इतना आकर्षण
इस देह लता मे है
सारे भौतिक दुर्गण
वह हाड चाम की पुतली
मलिन अपावन
फिर क्यों तुझको मनभावन

पशुओ जैसे सब काम
देह करती है
घिन भरी जन्मती, जीती है, मरती है
इस देह मोह से
सब अशाति फैली है

ऊपर से उजली
भीतर से मैली है
तन का आकर्षण
है पशु का आकर्षण
तू पशुता से ऊपर उठकर
मानव बन
है बुद्धि ज्ञान ज्यादा तुझमें
पशुओं से
इसलिए नेह तू लगा
ज्ञान छवियों से
तू मुड़ आत्मा की ओर
देखे छबि उसकी
जिस गुण से होती है
पहिचान मनुज की

अब तक जो चुप थी देह
जरा मुसकाई
अनगिन बसंत की
रंग-गंध उठ आई
ऐसी मुसकान कि जैसे
चाँदिनि छाई
ऋतु-बीज छू गई
भावमयी चिकनाई

ज्यों शून्य गगन
सहसा धरती बन जाए
बेशक्ल हवा
रसवती कली हो जाए
मधु ध्यान प्रिया का
स्वयं प्रिया बन जाए
तसवीर फ्रेम से उतरे
चलकर आए
बादल की छाँह
खेत बन जैसे उमडे
खुद फसल उठे
नभ घटा बने औ' घुमड़े
ज्यों धुंध याद का
महासिंधु बन ठहरे
गिरि बने त्याग
करुणा गंगा बन लहरे

कोरी, नीरस, निर्गन्ध
बात पर मन की
इस तरह उठी मुसकान
सलोने तन की

उत्तर मे फिर आवाज
देह की बोली
सब रचना-कला सृष्टि की
सिहरी डोली
संसृति मिठास प्याले भर हो लहराई
स्वर, शब्द, रेख की
हार गई चतुराई
झूमी चिर कुँवरि अनादि प्रकृति मदभीनी
विस्तार पा गई छवियों की रंगीनी
हो गई वनस्पति सुमनवती अलबेली
धरती सिहरी
ज्यों उरजों छुई नवेली
नक्षत्र खिले चाँदनी नई मुसकाई
फिर वक्ष मिलन, चुंबन की बेला आई
उन मुग्ध-वधू ऋतुओं के
गीत रँगीले
धर नृत्य भंगिमा
बने फूल चमकीले
काँपी टूटी स्वर सप्तक की प्राचीरे
भू नभ तक झनकारों की पडी लकीरे
बोली यों देह सुधा संसृति मे भरती
मिट्टी की देह कि ज्यों मिट्टी की धरती

वह राग रूप
साकार-गंध कस्तूरी
वह स्वयंप्रभा
हो गौर, श्याम या भूरी
मिट्टी ज्यो कली, फूल, फल, फसल खिलाती
यह देह-शिखा देहों के दीप जलाती
मिट्टी का बुझा दीप
धरती कहलाती
पड़ती है जबतक नही
देह की बाती
वे बुद्धि, ज्ञान, आत्मा की सभी अदितियाँ
हैं देह-तेज की ज्योतित भावाकृतियाँ
खिलता है देह बीज से
पंकज मन का
सूरज से उठता
जैसे बिम्ब किरन का
है देह भोगहित सृष्टि मधुमती के वर
लालिम चरणों मे बिछी प्रकृति की केसर
यह नील श्याम मानव जगती है मनहर
तनरचना मे मानव तन सबसे सुन्दर
क्यों सीमित हो धड़कन तन की प्रानो की
है सीमा कहाँ प्रकृति के वरदानों की

सावन की रात :

[२७ अगस्त १९५३]

नीली बिजली मेघों वाली
झींगुर की गुजार
धुधभरा साँवर सूनापन
हवा लहरियोंदार
घन घुमड़न भुज बंधन के उन्माद सी
बढ़ती आती रात तुम्हारी याद सी

रात रसीली बूदोवाली
जैसे देह रसाल
यहाँ महक उठती मेहदी की
वहाँ हाथ हैं लाल
विद्युत दीपन कगन की चमकार सी
अधर छुवन की सिहरन मंद फुहार सी

घन मतवाले काजल काले
जैसे लबे बाल
सोंधी धरा-गंध सी जिनकी
सुधि करती बेहाल
मिलन रात जो तन पर करते छाँह सी
धरा-कंठ जब इन्द्र डालता बाँह सी

तन का विदेह द्युति मंडल
है मानवता
जो सीमित करे प्रकाश
वही दानवता

इसलिए न बुझते
मनुज अग्नि के मोती
जिनसे गलकर
जग की नव रचना होती
उन तत्त्वों पर यह देह
विजय पाती है
इतिहास फसल
जिनसे मुरझा जाती है
है नही देह तृष्णा
अशांति का कारण
जीवन पियास जब हुई न अभी निवारण

इसलिए अरे ओ मन विदेह
ओ एक देह के खंड-बिम्ब
तू उस विराट उजयाले मे
दे मिला किरनमय निजता
जिस पथ पर चलती जाती नई मनुजता ।

सावन की रात :

[२७ अगस्त १९५३]

नीली बिजली मेघों वाली
झींगुर की गुंजार
धुवभरा साँवर सूनापन
हवा लहरियोंदार
घन घुमड़न भुज बंधन के उन्माद सी
बढ़ती आती रात तुम्हारी याद सी

रात रसीली बूंदोंवाली
जैसे देह रसाल
यहाँ महक उठती मेंहदी की
वहाँ हाय हैं लाल
विद्युत दीपन कंगन की चमकार सी
अधर छुवन की सिहरन मंद फुहार सी

घन मतवाले काजल काले
जैसे लंबे बाल
सोंधी धरा-गंध सी जिनकी
सुधि करती बेहाल
मिलन रात जो तन पर करते छाँह सी
धरा-कंठ जब इन्द्र डालता बाँह सी

इन्द्र-धरा के नयन, अधर, भुज
वक्ष मिलन का मास
बहुत दिनों के बाद मिले
आलिगन का उल्लास
बूँदे पड़ती फिर फिर अंकित प्यार सी
आँखे मुँदती सुख भीगे अंधियार सी

भूले हम आनन्द, रंग
जीवन रस का विश्वास
तन में तेज धूप वर्षा की
मन में साँझ उदास
उम्र सलोनी ठिठके सुमन विकास सी
मेघ दबे उजयाले के आभास सी

तन मन वाणी की सीमाएँ
बंधनहत संसार
किंतु भाव बल से ही होता
जीवन का विस्तार
इसीलिए है रूप रंग की प्यास भी
इसीलिए है जीवन मे विश्वास भी

: हेमंती पूनो :

[१९ नवम्बर १९५३]

चाँद हेमंती
हवा बहती कटीली
चाँदनी फैली हुई है
ओस नीली

चाँदनी डूबी हवा सुधि-गंध लाती
याद के हिम वक्ष से आँचल उड़ाती
चाँद के जब गोल शीशों आइनों में
मोम की सित मूर्ति सी गत आयु आती

हर निशा तब
पूर्णिमा बनती सजीली
चाँदनी फैली हुई है
ओस नीली

आज जीवन चाँदनी रूठी हुई है
आयु छवि शतखंड है टूटी हुई है
जिंदगी के चाँद का ठहराव कम है
आइनों की पाँत यों फूटी हुई है

पूर्णिमा भी इसलिए
लगती मटीली
चाँदनी फैली हुई है
ओस नीली

आज दिखता है दही सा चाँद शीतल
कौन जाने स्याह शीशा चाँद हो कल
उड़े उजली धूल बनकर चाँदनी भी
आबनूसी मूर्ति सी हो आयु उज्ज्वल

इसलिए हेमंत की
यह मंद ठिठुरन
तन छुवन से
ऊष्म तुम कर दो, रसीली

चरित्र की केसर :

[३० जनवरी १९५४]

सचित कर लेने दो धन
चारित्र्य फूल से लेकर
अनछुए नये केसर कन

व्यक्तित्व सिंधु बन जाये
तल कूल हीन हो जाये
डूबे संपूर्ण हिमालय
पर ऊपर लहर न आये

बाहर के सब आंदोलन
उतरें गहरे अंतर मे
ज्यों धूल बैठ जाती है
समतल पाकर थिर जल मे

आंधियां विरोधी आये
तूफान कठिन टकरायें
भूचाल फटें भावों के
बादल षड्यंत्र रचाये

टूटे बिजली भयबल की
गज मंधर भाव न टूटे

रवि गिरे स्याह पत्थर बन
नभ का ठहराव न टूटे

नभ सा अंतर, जिसमें अगणि
ज्योतिर्ब्रह्मांड समाये
सूरज के बड़े बड़े साथी
बनते मिटते है आये

शशि शुक्र जल बुझे रंग भरे
पर दाग न लगने पाया
तारे टूटे, ग्रह राख हुए
ध्रुव अस्त न होने आया

ध्रुव धीरज गल न सका मन का
थी आँच हजार अग्नियों की
छू सकी न शांति चंदिरा को
नोकीली छाया शनियों की

इस रहस पद्म की छबि विराट
है नही किसी ने भी आँकी
इन चॉद सितारों के आगे
है और बहुत दुनिया बाकी

मन मे जितने अनुभव गहरे
उतना ही मौन सधा मुखपर

हैं घेरे जितनी ज्वालाएँ
उतना ही शीतल है अंतर
पृथ्वी जैसा संतोष परम
मिट्टी सा मन उर्वर उदार
वाणी हो जाए मंत्र छंद
फसलों जैसे ऊगे विचार
तू बात कहे जो एक बार
वह कोटि कंठ स्वर दुहराएं
तू बोये जो भी भाव बीज
वे सदियों तक उगते जाएँ
दुख के दानव ग्रह बुझें सकल
सामाजिक ज्वाला राख बने
इंसान बने खुद ही ईश्वर
मानवता उजला पाख बने ।

[गांधी दिवस]

इतिहास :

[लेखक के बृहद् काव्य 'पृथ्वी' का एक अपूर्ण अंश

खोलो यह ग्रंथ है
चिरंतन समय का
आदि पृष्ठ धुँधले है
अक्षर मिटे है कुछ
उड़ गया है मुख्य पृष्ठ
भूमिका न मिलती है
पहले अध्यायों के
खो गये है पृष्ठ कई
हो गये है लुप्त कई
धूल ढके गुप्त कई
बीच बीच मे के कुछ पृष्ठ
फटे दिखते है

जिन पर है कटा-चिह्न
निर्दय तलवार का
युद्ध के प्रहार का
ग्रंथ कही छेद भरा
काट गया जिसे मंद
दीमक अतीत का
कितने अध्यायों की

पंक्तियाँ घिसी ही रहीं
फैल कर स्याह लाल
स्याही जमी है कहीं
इंसानी खून की
मुरझाकर जम गई
कहानी प्रसून की

लेकिन न देखो तुम
धूल भरी छापो को
रक्त उत्पातो को
इंसानी पापो को
स्याह-सुर्ख धब्बों में
चलती आलोक किरन
जीवन की ज्वाल भरी जलती मशाल है
विजय कथा पृथ्वी की
सृजन चिरंतन की
लोक अनुरंजन की
जीत जन मंगल की
शोषण अमंगल पर
अशुभ कुरूप पर
सदा जीत सुंदर की

असुरों पर देवों की
दिति पर अदिति की
अंधकार दैत्यों पर
तेजस आदित्य की
राक्षस पर रुद्र की
वृत्र पर इन्द्र की
रावण पर राम की
बर्बरता कंस पर
संस्कृति के श्याम की
नागर संतान की
और आज
सामाजिक प्रेतों पर
मुट्ठी भर दैत्यों पर
बहुजन महान की
प्रतिक्षण विजय है

धरती की सुँदरतम
सृष्टि इंसान है
मानव की पशुता ही
जिंदा शैतान है
उस ही शैतान पर
जीत इंसान की
पृथ्वी कथा है
इतिहास की कहानी है ।

नींव रखनेवालों का गीत :

[२८ अप्रैल १९५४]

माथे पर न रक्खो हाथ
जरा कुछ और तपने दो
आँखों मे न पलकों की उतारो रात
श्रमजा नीद के अंकुर पनपने दो
हुई है लाल आँखे
इन्हें थोड़ा और जलने दो
दहन के खरे पानी से
समय की कोर सजने दो
सहज का सुख नहीं मंजूर
छोटी तृप्तियाँ बेकार
उठे जबतक न मिट्टी से नया संसार
तुरत की चैन रंगीनी सभी निस्सार

मिलाना खींच छोटी डोर के दो छोर
लगाना गाँठ मुश्किल है
किसी की पहिन कर उतरन
समझना पा लिया त्रिभुवन
मुलम्मा, भुलावा, छल है
अनल गुन के लिए मेहनत
पसीने से बनेगा पथ

थकन है खींचने की
इसलिए छुट जायगा क्या
राह ही मे सूर्य निर्मित रथ
इसी से जिंदगी की तिक्त
कड़वी, कटीली अनुभूति
मन में और पचने दो
हमारे दर्द, दुख, संघर्ष की
मजबूत छाती पर
नई पीढ़ी सँवरने दो

इन्दुमती :

[काव्य-रूपक]

सूरज के आलोक पथ सी
रघुकुल की गाथा उज्ज्वल है
छंदो मे ज्यों गूंज ओ३म् की
ज्यो हविष्य मे गंगाजल है
जिनके यश के यज्ञ धूम से
निर्मल सौ सौ शरद हुए हैं
उजले कमल छत्र सा जिनका
तन की छाया का मंडल है

सांध्य अग्नि ज्यों दीपित होती
लेकर तेज अंश दिनकर से
नांदिनेय रघु से अज जन्मे
ज्यों बालेन्दु क्षीर सागर से
रूप कांति ज्यों एक दीप से
जलकर पाता दीप दूसरा
रविकुल की श्री अज ने पाई
कार्तिकेय ने ज्यो शंकर ने

हंसपंक्ति, नक्षत्र, कुमुद ने
उनकी कीर्ति मधुरिमा छाई

उधर रसीली सुमनवती ऋतु
इन्दुमती के तन पर आई
ज्यों मिलनातुर अंबुधि उठता
लेने चन्द्रोदय का चुंबन
इन्दु स्वयंवर में अज पहुंचे
पा विदर्भ से राज निमंत्रण

कामना रंजित हुई विश्राम की वह रात
नीद आई सकुचती ज्यों नवप्रिया का गात
रात बीती, पर उनीदे थे नयन जलजात
ले स्वयंवर के अरुण घट आ गया था प्रात

प्रभाती

खिल गया है फूल दिन का
किरण रथ ले अरुण आया
उठो हे रघुवंश दिनमणि
कमल केसर पवन लाया

राजलक्ष्मी सी धरा यह
कुसुमिता आसागरा यह
छू चरण की कांति होगी
फुल्लमुख इंदीवरा यह

नागकेसर चँवर, शतदल छत्र
पृथ्वी ने सजाया

खिल गया है फूल दिन का
किरण रथ ले अरुण आया।

रंग सुमन, मणिचौक, रत्नघट
सजे रत्न आसन चमकीले
चित्रित हुआ स्वयंवर मंडप
बिछे रम्य केसर पट पीले

शंख, मृदंग, तूर्य का वादन
ज्यों मेघों का मंगल गर्जन
सूर्य चन्द्र के वंशज आये
विद्युत से चमके सिंहासन

पारिजात ज्यों पुष्पराशि मे
कार्त्तिकेय जैसे मयूर पर
चारुपलक अज आकर बैठे
सुरधनु से आसन के ऊपर

अगरु धूम की रेखाएं जब
अरुण पताकाओं तक आईं
रंजित वसना, दीपशिखा सी
इंदुमती को सखियाँ लाईं ।

स्वयंवर गीत

हे लाजवन्ती, चकोरनयना
तुम चाँदनी सी वरो चन्द्रमा

मधूक माला ले चूर्ण लोहित
तन रोचनागौर, घनसार विरचित
अरालकेशी, नितम्बगुर्वी
मृगांक मुख पर छाई अरुणिमा
वरो चन्द्रमा

हिमवक्ष पर सुरभित पत्र-रचना
रम्भोरु रागारुणा क्षौमवसना
तुम कौमुदी सी पराग पथ पर
संचार करती चलो मधुरिमा
वरो चन्द्रमा।

लोचन भृङ्ग खिचे भूपों के
रूप कमल पर स्वयंवरा के
चतुर सुनन्दा परिचय देती
चली साथ मे पतिंवरा के

राजहंसिनी जाती हो ज्यों
उठती लहरों से पद्मों पर
मुग्ध हुए नृप, इन्दुमती के
रचे अलक्तक से चरणो पर

तब वंशावलियों से परिचित
रनिवासों के रस मे घोली

मगधराज के संमुख जाकर
चतुर सुनन्दा यों हँस बोली

सुनन्दा

सखि स्वयंवरे, नयन उठाओ
लाज विमुग्धा संमुख आओ

ये सुरेन्द्र से मगध महीपति
इनसे पृथ्वी राजवती है
नक्षत्रों से भरी रात ज्यों
शशधर से ही कांतिमती है
इन्हें वरण कर तुम ऋतम्भरा
वसुधा सी रानी बन जाओ
सखि स्वयंवरे, नयन उठाओ

इन्दुमती

सखि, जब नहीं कौमुदी रजनी
दिन में कैसे खिले कुमुदिनी

सुनन्दा

कमलमुखी, ये अंगदेशपति
इन पर मुग्ध देव ललनाएं
शरच्चन्द्र से ये अवन्तिपति
जिनकी छवि से दीप्त दिशाएं

शुभ्र चद्रिका छाई रहती
इनके भवनो उद्यानो मे
कृष्णपक्ष को उज्ज्वल करती
मौलिचन्द्र की उदित कलाएं

इन्दुमती

पर सखि, बद तामरस अतर
खिला न पाते कोटि सुधाकर

सुनन्दा

चारुलोचने, इधर निहारो
कार्तवीर्य से परम प्रतापी
ये अनूप देश के स्वामी
इनके यज्ञ-यूप द्वीपों मे
अग्निदेव के ये अनुगामी
माहिष्मती राजभवनों की
बनो अंकलक्ष्मी तुम सुन्दर
पद्मसार सी छबि फैलाओ
रम्य नर्मदा की लहरों पर

इन्दुमती

सुन सखि, शरद यामिनी उज्ज्वल
फुल्ल न करती स्वर्ण कमल दल

सुनन्दा

हे अभिरामा, ये हिमांशु से
दृगरंजन नृप शौरसेन के
चैत्र चन्द्रमा बनकर रहते
रनिवासों की कांत रैन के
जिनके जलविहार में वहता
वक्षस्थल का गोरा चन्दन
कालिंदी के नीले जल को
ज्यों गंगा करती आलिंगन
जहाँ चैत्ररथ से भी सुन्दर
फूलों छाया है वृंदावन
वर्षा शीतल शिलातलों में
नील मयूरों का है नर्तन
वक्षहार में कौस्तुभ जैसी
जो द्युतिवंत नागमणि पहिने
उन्हें वरो तुम सखी सुनयने

इन्दुमती

किन्तु नदी कब सागरगामिनि
गिरि से रुकती है, मनभाविनि

सुनन्दा

ये महेन्द्र से हेमांगद
जिनका सागर पर राज्य अटल है

जहाँ लौंग के फूलों डूबा
द्वीप अनिल बहता शीतल है
याम-तूर्य है सिंधु बजाता
भरता तालवनों में मर्मर
फेनराशि से रत्न चढ़ाता
इनके चरणांकित महलों पर

यदि रहना चाहो मृगनयनी
नागवल्लियों के कुंजों मे
है तमाल की सेज जहाँ पर
एला गंधित मलय वनों में
तन्वि, वरो तुम पांड्यराज को
जिनके तन पर है हरिचंदन
हेमवर्ण तुम, ये इन्दीवर
ज्यों विद्युत से मिलें श्याम घन

इन्दुमती

पर सखि, मुंदे कमल के लोचन
बालारुण के हुए न दर्शन

[**विलयन**]

वह स्वयंवरा दीपशिखा सी
चलती थी जिस नृप को तजकर

कांतिहीन पथ-भवनो सा मुख
हो जाता रजनी सा सांवर

चतुर सुनन्दा तब मुसकाकर
अज के संमुख बोली आकर

सुनन्दा

लो अब देखो पद्मलोचने
भानुवंश की शोभा निरुपम
अनवद्यांग अनंगरूप अज
राजकमल पर बालारुण सम

तेज अंश इक्ष्वाकु वंश के
शत यज्ञों की कीर्ति कथाएं
भूमि, सिंधु, पाताल, स्वर्ग में
अंकित जिनकी रथ रेखाएं

कुल की कांति, चन्द्रलेखा छवि
गुण, लावण्य, अरुण-मणि यौवन
इन्हें वरण नवकुंवरि करो तुम
मिले रत्न से जैसे कंचन

[विलम्बन]

× × ×

तब संकोच भरी चितवन से
इन्दुमती ने पलक उठाये
नयन हुए अनुरक्त देखकर
अरुण लाज से फिर भर आये

कुसुमित अंग हुए रोमांचित
लाल हुआ गोरा चन्द्रानन
चरण रुके, झुक गये नयन फिर
मुग्ध हृदय का कर चित्रांकन

समझ गई सब चतुर सुनन्दा
इन्दुमती से हँसकर बोली
अभी शेष है अन्य भूप सखि
आगे चलो रुको मत भोली

पर उत्तर मे एक बरजती
रोष कुटिल जब चितवन पाई
लाजवती के हाथों से ले
वरमाला अज को पहिनाई

मूर्तिमय अनुराग जैसी वह स्वयंवर माल
कामिनी ने ज्यों भुजाएं कठ मे दी डाल
इन्दु अज का मिलन जैसे सिधु सुरसरि धार
ज्यों शरद के चन्द्रमा से चांदनी सुकुमार

सुख का सिंधु नगर में फैला
उठा गगन तक मंगल वादन
इंदुमती अज गये नगर जब
फूल उठे पुरजन के आनन

पुर सुंदरियों ने दर्शन को
खोले स्वर्ण सौध वातायन
श्लथ कुंतल, अधरच्चे दृगंचल
खुले वसन, रुक गये प्रसाधन

रत्न, अर्घ्य, मधुपर्क सहित अज
इन्दुमती के साथ सुहाये
शशि किरणों से तट तक खिंचकर
फेन भरा सागर ज्यों आये

अभिमंत्रित अर्चित हुताग्नि से
वह विवाह मंडप था पावन
मिल नयन, कर से पुलकित कर
मिलन यज्ञ हो गया सुहावन

यज्ञ-गीत

तुम छवि-रुचिरा, यौवन मधुरा
हो ध्रुव सुहाग, रविकुल कमला
दे बालातप
तुम चंद्रगात

ज्यों मिलें मेरु पर
दिवा रात
वे मदन और तुम कामकला
हो ध्रुव सुहाग, रविकुल कमला
वह यज्ञधूम
हवि सार सना
कानों का नीला
कमल बना
धूमारुण दृग, अंजन बिखरा
हो ध्रुव सुहाग, रविकुल कमला
शिखिपंख छत्र
गज दन्तासन
यव, दूब, तीर्थजल
नीराजन
तुम ऋद्धि सिद्धि मृगमद तिलका
हो ध्रुव सुहाग रविकुल कमला

[विलयन]

: धरा दीप :

गीत

कातिक का श्याम फूल
दीपों की पाँखुरी
धरती पर बजे
नए जीवन की बाँसुरी

रचना का स्वर्ण कमल
खिला नगर गाँव मे
जली नई दीपावलि
सुखश्री की छाँव में
लक्ष्मी का रूप नया
नई रैन सांवरी

दीप जलें द्वार-द्वार
अन्न धन मिले अपार
सदियो का रोग शोक
जले ज्यो पतिंग भार
पहिने सुहाग वसन
मानवता नागरी ।

झिलमिल जलते दीप धरा के
नदियो ने
नदियो ने

जीवन की लौ उठती रहती
नगर, ग्राम, वन, नदियों से
मिट्टी का आलोक चिरंतन
गतिमय है जिससे जगजीवन
अंधयारे के कोट कँगूरे
सदा काटता जो सूरज बन
हर युग में उठती है
एक किरन तेजोज्ज्वल
हर युग में खिलता है
एक दीप का मंडल
दिन मे सूरज
दीप रात में जो बन जाता
हर युग के अंधयारे में
मानव बन आता

धरती पर घिरती
जब कभी अमावस काली
तभी नई संस्कृति की
उठती है दीपाली
नई चमक का दीप
लिये कर में वह आती
ऊंची हो जाती है
मानवता की बाती

सदियों से इतिहास चक्र
यह अविरल चलता
एक दीप हर वक्त
अंधेरे में है जलता
मिट्टी का उल्लास अमर है
जीवन का विश्वास अमर है
जलते जाते दीप, दीप से
दीपों का यह तार अमर है
यह दीपो की डोर
कभी है खत्म न होती
अंधकार के सागर से
ले आती मोती
उन्हीं मोतियों से है बनी
समय की माला
मनुज-दीप रुद्राक्ष
लोक जीवन छवि-शाला

फिर इतिहास फेरता
सुधि माला के मनके
अंधकार में कब कब
दीप जले जीवन के
दीपों का यह पर्व पुरातन
सदियों से आलोक सनातन

हर युग ने इसकी लौ मे
हैं दान किये अपने प्रकाश कन
तभी चिरंतन है उजयाली
तभी अमर हो सकी दिवाली

जिस दिन जग मे अंधयारे पर
जीता था आनंद उजाला
साधन लक्ष्मी ने मानव को
जब पहिनाई थी जयमाला
उस दिन बंधन टूटे भय के
दीप जल गये मनुज विजय के

प्रथम भोर जब खिला जगत का
मृत्युभरा तम मिटा विगत का
मानव ने रवि को पहिचाना
प्रथम रहस्य सृष्टि का जाना
जानी सूर्य चन्द्र के दीपों की उजयाली
रातों जलती हुई सितारो की दीवाली
फिर फन खोल रात जब आई
जंतु समान प्रकृति चिल्लाई
तब सहचरि के साथ मनुज ने
वन में पहिली आग जलाई

आग जली, वन खंड मिटे
जंगल में जीवन जागा
घन अंधकार का महाजंतु
मानव बस्ती से भागा
पहिचाने आदि मनुज ने
वन, पर्वत, नदियाँ, सागर
फिर रत्नों भरी प्रकृति के
कुछ साधन हुए उजागर

पर अकेले कठिन था
घन प्रकृति को देना चुनौती
उस अगम, अज्ञात से
लाना अनोखे रत्न मोती
दिति, अदिति के पुत्र
बलशाली, यशस्वी देव दानव
प्रकृति मंथन को जुटे तब
खोज लाने रत्न अभिनव

थे खड़े पर्वत भयानक
वन खड़ा था पथ वरजता
सामने थे नाग दुर्दम
सिंधु उठ उठ कर गरजता

हाथ मे कर विषम पर्वत
चीर कर सारे सघन वन
नाथ कर सब नाग हिंसक
रच गया फिर सिंधु मंथन

फेन भरे सागर का फैला था अंधकार
ऊपर थे घने मेघ नीचे था जल अपार
बंधन मे आया फिर अंतहीन वह प्रसार
द्वीपों के खुल गये रहस्य भरे रत्न द्वार

पृथ्वी के शतदल पर लक्ष्मी फिर उदित हु
नया स्वर्ण धान्य देख निर्धनता विजित हु
मानव के यत्नों से महाप्रकृति चकित हुई
सामाजिक सुख की वह प्रथम रात मुदित

आदिम समाज बीच
पहिली वह प्रकृति खोज
कृषि युग का बीज बनी
संस्कृति की प्रथम दोज
रस मिले वनस्पति से
धेनु, अश्व वन्य शोध
द्वीपों से सुरा, अप्सरा
सुवर्ण, रत्न बोध

प्रश्न उठा रत्नों का स्वामी अब कौन रहे
भोग करे कौन अधिक और कौन मौन रहे
श्रेष्ठ रत्न देवों को मिले थे विभाजन में
जागी तब प्रतिहिंसा असुरों के तन मन में

साधन युत देवों के
उपनिवेश स्वर्ग बने
वनचर से फिरते थे
असुरों के झुण्ड घने
दुग्ध, अन्न, सुधा, सोम
देवों के धाम गने
देख क्षुब्ध हुए असुर
साधन संघर्ष ठने

देवता नव शक्ति पाकर
हो रहे थे मुदित मन में
पर विषम षड्यंत्र करते थे
असुर मिल श्याम वन में
पृष्ठ पर था भीम पर्वत
सांस लेता घोर जंगल
थी मशालों में चमकती
दानवों की देह श्यामल

विकट नरकासुर उठा तब
पाशवी वन-शक्ति लेकर
छीनने ऐश्वर्य अमृत
सोमपायी सुख जलाकर
उठा हिसा का अंधेरा
धरा से लेकर गगन तक
कर उठे चीत्कार फिर से
सृष्टि के पाषाण कन तक

फिर से थी प्रबल हुई शक्ति अंधकार की
कंपित धरा थी प्रकाश को पुकारती
और सहन जब न हुई पीर रक्तधार की
काटी तब विष्णु ने अनीति शक्ति नारकी

फैला फिर जीवन मे लक्ष्मी का सुख अपार
जले विजय दीप मिटा चौदस का अंधकार
रत्न रचित दीप जले घर घर मे द्वार-द्वार
प्रतिहिसा, रक्त,कलह-रात जली हुई क्षार

सदियों तक बहते बहते यह सुख की धारा
हुई क्षीण, घिर आया सामाजिक अंधयारा
एक छत्र था लोक नही सत्ता खंडित थी
धरा अनार्य बनैली छाया से मंडित थी

था अगस्त्य ने पंथ दिखाया विन्ध्य पार का
किंतु अरण्यों में था बादल असुर भार का
ऋषियों के एकाकी आश्रम थे दक्षिण में
राक्षस थे लंका में वन्य जातियां वन में

ले आर्यों से महाज्ञान
रावण बलशाली
वन ज्वाला बन फैला
भरी रक्त की थाली
कंपित हुई दिग्गज
वानर सत्ता हारी
खड्ग लिये वह उठा
जीतने दुनियां सारी

रावण

रक्त
और रक्त
और रक्त मुझे चाहिए
जीवन का रक्त मुझे चाहिए
मानव का रक्त मुझे चाहिए

रक्त कर मुझे देते देवता
त्रिभुवन का शीश सामने झुका
वश में हैं इन्द्र, शिव, पवन, ब्रह्मा

मैंने फिर निश्चित की
प्रकृति की परंपरा
रक्त क्षुद्र मानव का
मुझको स्वीकार नही
ऋषियों का पूत रक्त चाहिए
रक्त
और रक्त
और रक्त मुझे चाहिए

दिशि दिशि मे दमक रही
छाप मम विलास की
सूर्य चंद्र छाँह बने
मेरे चद्रहास की
ऋद्धि सिद्धि चरणो की
करती है आरती
मेरी ज्ञान गरिमा पर
मौन हुई भारती
मेरी अनुज्ञा बिना
न पत्ता तक हिलता है
जो न झुके शीश
वही शीश मुझे चाहिए

रक्त
और रक्त
और रक्त मुझे चाहिए

[विलयन]

शीश गिरे काट काट कर
कोटि रक्त कलश भरे
रावण की शक्ति देख
भूमि स्वर्ग अतल डरे

ले चुका था जन्म लेकिन
तेज यज्ञों का चिरंतन
आ गया था राम बनकर
आर्य बल विश्वास नूतन
गंग घाटी की सुघरता
उर्वरा जो मृत्तिका सी
थी वही सौंदर्य सीता
यज्ञपूत वसुधरा सी
राजलक्ष्मी राम की बन
ब्याह कर साकेत आई
तब अवध के राज्य की
विस्तार पूनम मुसकराई

उधर रावण की प्रचंड
अनार्य संस्कृति बढ़ी सीमा

जाग सदियों बाद वह
छूने लगी थी विन्ध्यसीमा

अवध में था शोक विग्रह
राम ने बनवास पाया
राक्षसों मे शक्ति संचय का
नया विश्वास आया
जाल फैला निशिचरों का
दक्षिणी पर्वत वनों मे
ज्वाल हिंसा की उठी
ऋषि रक्त फैला आश्रमों मे

लक्ष्य था दशकंध का
फैले न दक्षिण आर्य छाया
आश्रमों पर इसलिए था
रक्त कर उसने लगाया
और फिर वह शक्ति से
हर ले गया पृथ्वी सुता को
वंदिनी कर आर्य जग की
नीति, श्री, सुख, संपदा को

बुझ गये थे मंत्र चर्चित
यज्ञ पूजा दीप सारे

शस्त्र के संमुख झुके थे
आर्य संस्कृति के सितारे
वह प्रथम सामन्त सत्ता का
चमत्कारी उदय था
एक कर मे था दुधारा
दूसरा देता अभय था

देवता, गन्धर्व, किन्नर
विवश इन्द्र, वरुण, पवन थे
दास रावण के हुए वे
त्रस्त, वन्दी, नत नयन थे
राम थे वन मे, न थी
सेना, न साथी या सहायक
जातियाँ वन प्रान्त की ले
बन गये वे लोक नायक

शस्त्रो से शस्त्र बजे
वज्र के हुए प्रहार
जली स्वर्ण लंक, जले
निशिचर ज्यों कीटभार
विमल हुए दक्षिण वन
मिटा आसुरी पसार

हिमगिरि से कन्या तक
संस्कृति का बँधा तार

विजय राज्यलक्ष्मी ले
राम अवध लौटे जब
एक छत्र के नीचे
दीप बना भारत नव
हिन्दमहासागर तक
गूँजा मंत्रों का रव
प्रथम बार एक सूत्र
राज्य हो सका संभव

संस्कृति की ज्योति जली
युग युग मे इस प्रकार
सामाजिक यत्नो से
अन्धकार गया हार
वही ज्योति द्वापर मे
बनी कृष्ण मनमोहन
नैतिकता दीपक पर
जले कंस दुर्योधन
सागर के छोरों तक
जमा नीति का शासन
यज्ञ महाभारत का
बना शान्ति का सावन

जब जब इस धरती की
ज्योति थकी मुरझाई
राम, कृष्ण, गौतम औ'
गाधी बन उठ आई

इस युग मे पश्चिम का
फैला जब अंधकार
दीपक की शिखा बनी
आजादी की पुकार
जन बल का सूर्य उठा
हारा साम्राज्यवाद
मिली राज्य लक्ष्मी फिर
भारत को युगो बाद
सामाजिक सुख की
नव रचना के खुले द्वार
नगर, ग्राम, वन, नद पर
लाने फिर से निखार

लक्ष्मी की मूर्ति नई
मिट्टी से निर्मित हो
खेतों से मिले रत्न
श्रम सुवर्ण पूजित हो
भय, विनाश, कष्ट मिटे

युद्ध नाग खंडित हो
सुख के समान भोग से
कमला वदित हो

जीवन जलाता जो
लौह स्वर्ण अर्थशास्त्र
मैत्री के पर्दे में
रचता प्रपंच मात्र
एक हाथ स्वर्ण लिये
एक हाथ शस्त्र घोर
नष्ट हो पिशाच नया
स्वस्थ हो समाज भोर

कातिक का श्याम फूल
दीपो की पाँखुरी
धरती पर बजे
नये जीवन की बाँसुरी

———

सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

दार्शनिक, आध्यात्मिक, धार्मिक

भारतीय विचारधारा	श्री मधुकर एम ए	२)
अध्यात्म-पदावली	श्री राजकुमार जैन एम ए.	४॥)
कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न	श्री शोभाचन्द्र 'भारिल्ल'	२)
वैदिक-साहित्य	प० रामगोविन्द त्रिवेदी	६)
जैन-शासन	प० सुमेरचन्द्र दिवाकर	३)

उपन्यास, कहानियाँ

मुक्ति-दूत [उपन्यास]	श्री वीरेन्द्रकुमार जैन एम. ए	५)
सघर्षके बाद	श्री विष्णु प्रभाकर	३)
गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
आकाशके तारे : धरतीके फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२)
पहला कहानीकार	श्री रावी	२॥)
खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२)
अतीतके कपन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)

उर्दू-शायरी

शेरो-शायरी	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
शेरो-सुखन [पाँचो भाग]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२०)

संस्मरण-रेखाचित्र

हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
सस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
रेखा-चित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
जैन-जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

कविता

वद्धमान [महाकाव्य]	श्री अनूप शर्मा	६)
मिलन-यामिनी	श्री हरिवशराय 'बच्चन'	४)
धूपके धान	श्री गिरिजाकुमार माथुर	३)
मेरे बापू	श्री हुकमचन्द्र 'बुखारिया'	२॥)
पंच-प्रदीप	श्रीमती शान्ति एम ए	२)
आधुनिक जैन-कवि	श्रीमती रमारानी जैन	३॥)

ऐतिहासिक

खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशकर व्यास एम ए	४)
कालिदासका भारत [१]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	४)
हिन्दी-जैन-साहित्यका सं० इतिहास	श्री कामताप्रसाद जैन	२॥=)

ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	४)
करलक्खण	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	॥)

विविध

द्विवेदी-पत्रावली	श्री बैजनाथसिह विनोद	२॥)
जिन्दगी मुसकराई	श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
रजतरश्मि [एकांकी नाटक]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२॥)
ध्वनि और संगीत	प्रो० ललितकिशोरसिह	४)
हिन्दू-विवाहमें कन्यादानका स्थान	श्री सम्पूर्णानन्दजी	१)
ज्ञानगगा [सूक्तियाँ]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)
रेडियो नाटक	श्री सिद्धनाथ कुमार एम० ए०	२॥)
शरद के नारीपात्र [आलोचनात्मक]	प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४)

महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रकाशन

सिद्धान्तशास्त्र

महाबन्ध [भाग १]	प० सुमेरचन्द्र दिवाकर न्यायतीर्थ	१२)
महाबन्ध [भाग २-३]	प० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री	२२)
तत्त्वार्थवृत्ति	प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य	१६)
तत्त्वार्थराजवार्तिक [भाग १]	प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य	१२)
समयसार [अंग्रेजी]	प्रो० ए० चक्रवर्ती एम ए	८)

चरित

महापुराण [भाग १-२]	प० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य	२०)
उत्तरपुराण	प० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य	१०)
पुराणसंग्रह [भाग १]	प० गुलाबचन्द एम ए व्याकरणाचार्य	२)
धर्मशर्माभ्युदय [धर्मनाथ-चरित]	प० पन्नालाल साहित्याचार्य	३)
जातकट्ठकथा [पाली]	प्रो० भिक्षु धर्मरक्षित	९)

स्तोत्र, आचार

वसुनन्दिश्रावकाचार	प० हीरालाल जैन न्यायतीर्थ	५)
जिनसहस्रनाम [स्तोत्र]	प० हीरालाल जैन न्यायतीर्थ	४)

काव्य, न्याय

न्यायविनिश्चयविवरण [भाग १-२]	प्रो० महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य	३०)
मदनपराजय [काव्य]	प्रो० राजकुमार जैन, एम ए	८)

कोष, छन्दशास्त्र

नाममाला सभाष्य	प० शम्भुनाथ त्रिपाठी	३॥)
सभाष्यरत्नमञ्जूषा [छंदशास्त्र]	प्रो० एच० डी० वेलणकर	२)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

भारतीय ज्ञानपीठ पर लोकमत

पुस्तके हर दृष्टिकोणसे सुन्दर और उपादेय है। —सम्पूर्णानन्द

सभी पुस्तके महत्त्वपूर्ण है। ज्ञानपीठ साहित्यकी बडी सेवा कर रहा है। —अमरनाथ झा

इसमे कोई सन्देह नही कि पुस्तके बहुत उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक है। —हजारीप्रसाद द्विवेदी

पुस्तकोकी छपाई, सफाईके विषयमे कहना ही क्या है। बहुत ही सुन्दर है। —बनारसीदास चतुर्वेदी

भारतीय ज्ञानपीठके प्रकाशन हिन्दीके विभिन्न दिशाओमे अपना स्थान बना रहे है। थोडे ही दिनोमे इस सर्व-साधन-सम्पन्न प्रकाशन सस्थाने हिन्दी जगत्‌मे अपना समादृत स्थान बना लिया है। —सम्मेलनपत्रिका

भारतीय ज्ञानपीठके प्रकाशन विचार-प्रधान और उपयोगी होते है। इन सबकी छपाई साफ सुथरी, आवरण आकर्षक और मूल्य बहुत ही उचित होता है, कही-कही तो हम कहेगे कि इनके प्रकाशन कीमतोकी दृष्टिसे बहुत ही सस्ते है। —हिन्दी जगत, बम्बई

इस सस्थाकी उम्र तो ज्यादा नही, पर थोडी-सी उम्रमे ही इसने बहुत कामकर डाला है और कई अच्छे ग्रथ निकाल दिये है।—नयाहिन्द इलाहाबाद

भारतीय ज्ञानपीठको प्रकाशनक्षेत्रमे आये अभी बहुत दिन नही हुए है, परन्तु इसी बीचमे अपनी सुरुचि और सुघरताकी छाप उसने हिन्दी पाठकके मनपर लगा दी है। साहित्यके लक्ष्यको उसने अपनी दृष्टिसे ओझल नही होने दिया है। —जीवनसाहित्य

भारतीय ज्ञानपीठके प्रत्येक प्रयोग हिन्दी इतिहासमे मीलके पत्थर रहेगे। हिन्दीके मापदण्डके प्रतीक! —नवभारतटाइम्स, बम्बई

भारतीय ज्ञानपीठ द्रुतगतिसे जनमानसको स्वस्थ बनाये रखनेके लिए ठोस सामग्री दे रहा है। —लोकवाणी, जयपुर

भारतीय ज्ञानपीठने अनेक सुन्दर और उपयोगी पुस्तकोका प्रकाशन करके साहित्यके भाण्डारको परिपूर्ण किया है। —अजन्ता, हैदराबाद